आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ

राधा बाबा

कृपाके लिये श्रीजीके चरणोंका चिन्तन करें

'श्रीजीकी मुझपर कृपा है, इसका अनुभव कैसे हो'––इसका उपाय आपने पूछा है। मेरी समझमें इसका सर्वोत्तम उपाय है––श्रीजीके चरणोंका निरन्तर चिन्तन। मन श्रीजीके चरणोंमें चिपककर ही श्रीजीकी कृपाका अनुभव कर सकता है। अत्यन्त प्रेमसे 'राधे–राधे' कहते हुए श्रीराधारानीके चरणोंमें मनको लीन कर दें। फिर ऐसी कृपाका अनुभव होगा कि आप निहाल हो जायँगे।

अपने भविष्यको सदा निर्मल देखो

संतोके वचन हैं––'मालिक हैं साहेब सीताराम, सोच मन काहे को करे।' बस, निश्चिन्त रहिये। एक बहुत ऊँचे महात्माने कहा है––'अपने भविष्यको निर्मल देखो। सोचो कि प्रभु तुम्हें अवश्य मिलेंगे, चाहे तुम कितना ही अधम क्यों न होओ।' हमलोग भी ऐसा ही सोचें। सचमुच अपना भविष्य मलिन सोचना भगवान्‌की अपार दयाका अपमान करना है।

भगवान्‌के कृपामय स्पर्शकी प्रतीक्षा कीजिये

एक बात ध्यानमें रहनी चाहिये कि यदि लेशमात्र भी आकर्षण भगवान्‌के अतिरिक्त किसी और जगह होता है तो समझ लेना चाहिये, हम भगवान्‌के शरण हुए ही नहीं। वास्तविक शरणागति हो जानेपर आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जाता है। किंतु घबराना नहीं चाहिये। जिस दिन साधककी यह अभिलाषा हृदयसे सम्बद्ध हो जाती है, उसी क्षण भगवान् शरणागति स्वीकार कर लेते हैं। एक बात और है। जिसपर भगवान्‌की अत्यधिक कृपा होती है, जिसे भगवान् अपने पास बुलाना चाहते हैं, वस्तुतः वही इस मार्गमें वाचिक शरणागति भी ग्रहण करता है। देखें, आपकी इच्छा पूरी भी हो सकती है और नहीं भी पूरी हो सकती; किंतु यह वाचिक शरणागति एक दिन उन्हींकी दयासे सच्ची शरणागति में परिणत हो जायगी। आप भगवान्‌की दयाको अलौकिकताका अंदाज नहीं लगा सकते। मानवी बुद्धि भगवान्‌की दया कैसी होती है, इसको नहीं समझ सकती। यही कारण है कि अपने माप (स्टैंडर्ड) से ही हम भगवान्‌को जाँचते हैं और दुःखी रहते हैं। अतः सब प्रकारकी चिन्ता छोड़कर उस दिनकी प्रतीक्षा करते रहें, जिस दिन भगवान्‌के कृपामय स्पर्शका अनुभव करके आप कृतार्थ होनेवाले हैं।

संतके साथ शुद्ध पारमार्थिक सम्बन्ध ही रहे

जीवनका उद्देश्य यदि भगवान् हैं तो फिर किसी भी जागतिक प्रलोभनमें नहीं भूलना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने राजा मुचुकुन्दको स्वयं प्रलोभन देकर जाँचा; किंतु मुचुकुन्दने भगवान्‌की ही दयासे भगवान्‌को लिया, भोगोंको नहीं। उसी प्रकार संतके साथ सर्वथा शुद्ध पारमार्थिक सम्बन्ध ही रहे।

'नींद तोहि बेचूँगी, आली !'

एक भक्तका पद है, जिसकी प्रथम पंक्ति है––

'नींद तोहि बेचूँगी, आली ! जो कोई गाहक होय।'

इसपर विचार करें। प्रेमरसभावितमति व्रजसुन्दरियाँ अपना व्यावहारिक ज्ञान यहाँतक खो बैठती हैं कि उन्हें प्रतीत होने लगता है––नींद भी खरीद–बिक्रीकी एक वस्तु है। वास्तवमें तो तमोगुणसे उत्पन्न होनेवाली निद्रा श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता व्रजसुन्दरियोंको स्पर्श ही नहीं कर सकती। अपने प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके चिन्तनमें वृत्तियोंके सर्वथा तन्मय हो जानेपर वे आत्मविस्मृत हो जाती हैं, इस आत्मविस्मृतिको ही वे निद्रा मान लेती हैं। सुषुप्तिकी भाँति अज्ञानमें उनकी वृत्तियाँ लीन हों, ऐसी उनकी निद्रा नहीं। उनकी चित्तभूमिमें तो सोते समय भी नित्य–निरन्तर अखण्ड श्रीकृष्णस्फुरण होता ही रहता है––

चलत, चितवत, दिवस जागत, सुपन सोवत रात।
हृदय तें वह स्याम मूरति छिन न इत–उत जात।।

ऐसी अनोखी निद्रामें ही एक गोपी विभोर थी––प्रियतम श्रीकृष्णके चिन्तनमें अपने–आपको भूली हुई शयन–पर्यंकपर अवस्थित थी। उसी समय लीलाविहारी आये, सर्वथा समीपतक आये। उन्होंने गोपीको देखा, वे उसके पास कुछ क्षण खड़े रहे, पर उसे उन्होंने जगाया नहीं। बल्कि मिलनोत्कण्ठा बढ़ाकर अधिकाधिक सुख देनेके उद्देश्यसे वे लौट गये। उनके लौटते ही व्रजसुन्दरीके हृदय–तन्तु उन्हींसे नित्य जुड़े रहनेके कारण खिंच–से गये, व्रजसुन्दरी भाव–समाधिसे जाग उठी। अभी भी प्राणनाथ तन्तुओंको आकर्षित करे रहे थे। इसीलिये गोपी व्याकुल होकर प्रांगणकी ओर दौड़ पड़ी। वहाँ देखा––विखरे हुए गुलालपर चक्र, छत्र, यव, अंकुश, ध्वज आदि चिह्नोंसे युक्त प्रियतमके पदतल अंकित हैं। अब तो गोपीके दुःखका पार नहीं––'आह ! प्रियतम आँगनमें आये और लौट

गये, और तुम री नींद ! अरी बैरिन !! मुझे सुलाये रखा ? री तुझे लज्जा नहीं आती ? तू मेरी सखी थी न ? मेरी व्यथा हरने आया करती थी और इसीके मूल्यमें तुमने मेरे प्रियतमके दर्शन–सुखको हर लिया ! क्यों ? ठीक है न ? अच्छा बात है। सखी ! मैंने भर पाया ! अब तू यहाँसे जा। नहीं, नहीं ठहर जा, यों तू पुनः मेरे पास आ जायगी। इस वृन्दावनमें तूझे पूछता ही कौन है, लौटकर पुनः मेरी वञ्चना करेगी। इसीलिये सखी ! मैं तो तुझे बेच दूँगी––किसी चाहनेवालेके अधीन कर दूँगी, जिससे तू लौट न सके। पर तेरा ग्राहक इस व्रजमें कहाँ है ? हाय ! हाय !! कदाचित् कोई तेरा ग्राहक मिल जाय तो नींद सखी ! उसके हाथ तुझे बेचकर मैं अपना पिंड छुड़ा लूँगी।'

बड़भागिनी व्रजसुन्दरी श्रीकृष्णदर्शनमें बाधा पाकर नींद–जैसी वस्तुको भी बेचनेका संकल्प कर रही है, पर हमलोग इतने अभागे हैं कि प्रत्यक्षमें जो वस्तुएँ श्रीकृष्णदर्शनमें निरन्तर बाधक है, जिनका त्याग अत्यन्त आसानीसे चाहते ही किया जा सकता है, उन्हें चाह–चाहकर, बुला–बुलाकर हृदयसे लगाये रहते हैं, उनके न मिलनेपर दुःखी होते रहते हैं।

अन्यके लिये स्थान न रहे

पढ़ने–सुननेका सार इतना ही है कि नेत्रोंमें, मनमें, प्राणमें प्रिया–प्रियतम बस जायँ, अन्यके लिये तनिक भी स्थान न रहे।

प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय 'रहीम' लखि, आपु पथिक फिरि जाय।'।

सराय (धर्मशाला) में तिल रखनेका भी स्थान न देखकर जैसे नया यात्री वहाँसे हटकर दूसरी धर्मशालाकी खोजमें चला जाता है, वैसे ही नेत्र, मन, प्राणोंमें सर्वत्र प्रिया–प्रियतमको भरा देखकर विषय अपने–आप हट जायँ, इसके लिये प्रयत्न करें।

व्रजकी रजमें रहकर सारी चिन्ता भूल जाइये

आप लिखते हैं––'श्रीवृन्दावन निजधाममें रहते हुए भी मेरे मनमें न जाने कितने पाप भरे हैं, कुछ भी असर होता नहीं।' बात ठीक है; पर चिन्ता क्यों करते हैं ? राधारानीके घरमें रहकर चिन्ता क्यों ? राधारानीकी प्यारी भूमिमें रह रहे हैं––भला, यह कम सौभाग्यकी बात है ? बस, इसी सौभाग्यको

याद करते हुए आनन्दमें मस्त रहिये। चाहे कुछ न हो, उस परम पवित्रतम सच्चिदानन्दमयी भूमिकी रजमें रहकर सारी चिन्ता भूल जाइये।

* *

आप व्रजमें बसते हैं, राधारानीकी अपार कृपासे ही व्रजवास मिलता है। पर जैसे शरीर व्रजमें है, वैसे मनका अणु–अणु व्रजकिशोरी एवं व्रज–किशोरमें रम जाय, इतनी चेष्टा और करें।

भगवान्‌के समर्पित वस्तुका महत्त्व

जो व्यक्ति भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित हो जाता है, उसकी दृष्टिमें अपने केवल भगवान् ही होते हैं एवं जो कुछ भी बचा रहता है, वह भगवान्‌का ही होता है। उस अवस्थामें उसके लिये 'मेरी माँ, मेरे बाप, मेरे भाई' आदि कुछ भी नहीं नहीं रहते। किंतु जो व्यक्ति अपने आपको उससे (भगवान्‌के समर्पित व्यक्तिसे) सम्बद्ध मानता है, वह बड़ा भाग्यवान् है; क्योंकि भगवान्‌को समर्पित हुई वस्तुसे सम्बन्ध रखनेवाली वस्तु भी स्वाभाविक भगवान्‌को समर्पित हो जाती है और उसपर भगवान्‌का विशेष अधिकार होता है। अवश्य यह बात तभी लागू पड़ेगी, जब कोई व्यक्ति अपने आपको हृदयसे उससे (भगवान्‌के समर्पित भक्तसे) सम्बद्ध मानता है।

आप अपना भवन बुहारिये

सनातन आचारका पालन करते हुए ही आप प्रिया–प्रियतमका अखण्ड स्मरण कीजिये। दूसरे बनते हैं या बिगड़ते हैं, इसका ठेका आपको श्रीकृष्णने दिया हो तो फिर तो उनकी सँभाल करनी चाहिये; पर यदि ठेका नहीं दिया है तो यह दोहा याद कीजिये––

तेरे भाऐं जो करौ, भलौ–बुरौ संसार।
'नारायन' तू बैठि कै, अपनौ भवन बुहार।।

आप चाहें तो निश्चिन्त हो सकते हैं

खूब नाम लीजिये तथा भगवान्‌की कृपाका दर्शन प्रत्येक परिस्थितिमें कीजिये। भगवत्कृपा एवं नामजपका आश्रय लेकर निश्चिन्त हो जाइये। आप चाहें तो निश्चिन्त हो सकते हैं; आपके चाहनेभरकी देर है। आपने चाहा तो नामके रूपमें भगवान् बिना किसी परिश्रमके ही जीभपर नाचने

लगेंगे, उनकी कृपाका प्रवाह बह जायगा। स्वयं निहाल हो जायँगे और बहुतोंको निहाल करेंगे।

* *

नाम अधिक–से–अधिक जपिये, इतनी प्रार्थना है। श्रीकृष्ण बड़े दयालु हैं, लेकिन परीक्षा भी अवश्य करते हैं। साथ ही उनके दरबारसे कोई निराश नहीं लौटता, यह बात भी भूलनी नहीं चाहिये।

युगल–सरकारको चित्तमें बसाइये

युगल–सरकारको चित्तमें बसाइये––जीवनका यही परम लाभ है। समय विद्युतकी भाँति आपके देखते–देखते आपको छोड़कर भाग रहा है। गिनतीके श्वास एक–एक करके कम होते जा रहे हैं। अब समय नहीं है कि आप किसी भी अन्य प्रपञ्चमें तनिक भी मन लगायें। वाणी प्रिया–प्रियतमके मधुर नामका उच्चारण करे, कान उनके लीलामृतका पान करें एवं नेत्रोंके सामने युगलछबि निरन्तर बनी रहे––बस, यही अभ्यास करना है तथा प्राणोंकी शक्ति लगाकर करना है।

भगवच्चिन्तनकी चेष्टा कीजिये, सफलता मिलेगी

खूब मौजसे श्रीकृष्णका निरन्तर चिन्तन कीजिये। सब काम एक तरफ तथा भगवच्चिन्तन एक तरफ। मनसे निश्चय करके चिन्तनकी चेष्टा कीजिये, तब चिन्तनमें सफलता मिलेगी। अन्यथा जबतक भगवान्‌के चिन्तनके समान कोई भी दूसरा काम लाभकारी दीखेगा, तबतक मन भगवान्‌को छोड़कर उस कामकी ओर ही झुकेगा; क्योंकि अनादिकालसे अन्य–अन्य विषयोंमें ही मनको स्वाद मिलता रहा है, भगवच्चिन्तनका स्वाद उसे ठीकसे कभी नहीं मिला। मिला होता तो फिर तो भगवच्चिन्तनके सिवा दूसरा काम मनसे होता ही नहीं।

महावाणीके पाठका अधिकारी

महावाणीके पाठ करनेका वास्तविक अधिकारी वह है, जिसके मनमें स्त्रीसम्भोगकी भावना सर्वथा समाप्त हो गयी हो, जो कामविकारसे सर्वथा मुक्त हो गया हो। महावाणी एक परम दिव्य ग्रन्थ है। बिना अधिकारी बने जो उसका पारायण करता है, उसके जीवनमें पतनकी ही आशंका

विशेष है। प्रिया–प्रियतम उनकी रक्षा करें।

शरीरके लिये संयम, पथ्य एवं औषधकी व्यवस्था रखनी ही चाहिये

शरीर क्षण–क्षण विनाशकी ओर ही बढ़ रहा है, यह प्रत्यक्ष है; पर विनष्ट होनेसे पूर्व इसे यथासम्भव इस अवस्थामें अवश्य रखना चाहिये कि यह अपनेमें रहनेवाले मनको प्रिया–प्रियतमकी ओर बढ़ते समय कहीं अद्विग्न न कर दे। मन जिस क्षण वास्तवमें प्रिया–प्रियतमको पकड़ लेगा, उस समय तो इसकी सँभालकी आवश्यकता नहीं रहेगी; सँभाल करेगा भी कौन ? सँभाल करता है मन; किंतु वह तो प्रिया–प्रियतमसे जा जुड़ा। अतः उस परिस्थितिमें तो शरीरका जो होना होगा, हो ही जायगा। पर उससे पूर्व शरीरके लिये संयम, पथ्य एवं औषधकी व्यवस्था रखनी ही चाहिये।

प्रिया–प्रियतमके प्रति सच्ची चाहका स्वरूप

प्रिया–प्रियतमका अखण्ड चिन्तन करें––बस, यही सार है। अभी मनमें अनेकों वासनाएँ, अनेकों कर्तव्यबुद्धियाँ भरी हैं। सब वासनाओंके जल जानेपर ही प्रिया–प्रियतमके प्रेमकी नींव खुदेगी; जीवनकी धारा उनकी ओर मुड़कर यह सच्ची चाह उत्पन्न होगी––

कबै झुकत मो ओर कौं ऐहैं मद–गज–चाल।
गरबाहीं दीन्हें दोऊ, प्रिया नवल नँदलाल।।
सिर झलकत मंजुल मुकुट, कटि लौ लट रहि छूटि।
सोहत ललित लिलार पै, उभै भौंह की जूटि।।
ता मधि बेंदी रतन की, गर मुकता की माल।
नैन छकौंहे कछु अरुन, सुंदर सरस बिसाल।।
कुडंल–झलक कपोल पर, राजति नाना भाँति।
कब इन नैननि देखिहौं बदन–चंद की कांति।।

अभी तो, सच पूछें, भजनकी नकल भी नहीं पूरी हो रही है। बस, उनकी कृपाकी बाट देखते रहिये।

* *

सिवा युगल–सरकारके और कुछ भी नहीं दीखे––इसका सरल–से–सरल उपाय है कि मनमें युगल–सरकारके प्रति आसक्ति पैदा हो

जाय। फिर मनमें ही नहीं, बाहरकी आँख भी जहाँ जायगी, वहाँ युगल–सरकार ही दीख पड़ेंगे। वस्तुतः युगल–सरकारके अतिरिक्त देखनेके लायक कोई और वस्तु है भी नहीं; पर हमलोगोंका मलिन मन इस बातको नहीं मानता, यही दुर्भाग्य है।

वहीं करें, जिसमें श्रीप्रिया–प्रियतमका मार्ग अधिक–से–अधिक प्रशस्त हो

जीवनका अनमोल समय व्यर्थ न जाय। बातों–बातोंमें ही जीवन समाप्त होता जा रहा है। यदि प्रिया–प्रियतमके चरणोंमें अनुराग नहीं हुआ तो यहाँकी सारी सफलता व्यर्थ है। दूसरे बातोंसे अनुराग होता भी नहीं; उसके लिये सर्वस्व त्याग करना पड़ता है। जबतक कुछ भी बचाकर रख लेनेकी वासना है, तबतक प्रेमकी बात करना तमाशा–सा है। अतः कहना यह है कि मन–ही–मन जरा यहाँके मोहको छोड़नेका अभ्यास कीजिये। माना, आपमें त्याग है, पर साथ ही सात्त्विक चेष्टाके नामपर बहुत–सी ऐसी चेष्टाएँ भी आप करते रहते हैं, जिनमें आपकी शक्ति व्यर्थ खर्च होती है। अतः एकमात्र वही आपको करना चाहिये, जिससे श्रीप्रिया–प्रियतमके प्रेमका मार्ग अधिक–से–अधिक प्रशस्त हो। थोड़ी सावधानी रखें, जिससे आपके द्वारा जो व्यर्थ चेष्टाएँ होती हैं, उनमें रोक लगे।

सारी बात इस बातपर निर्भर करती है कि श्रीप्रिया–प्रियतमकी स्मृति कितनी होती है। यदि स्मृति बढ़ रही है तो मार्ग ठीक है; किंतु यदि इसमें कमी आ रही है तो आप पथ भूल गये हैं, यह निश्चित बात है। आप इस कसौटीपर कसकर ही जीवनका सावधानीसे सुधार करना चाहिये।

दूसरेकी ओर न देखकर आप अपनेको ही सुधारिये

आप वृन्दावनमें रह रहे हैं—यह बड़ा सौभाग्य है; पर वृन्दावनमें रहकर आप दूसरोंकी त्रुटिरूप गंदी बातोंको देखनेके लिये समय क्यों लगाते हैं ? मेरी तो प्रेमभरी राय है कि जहाँ–कहीं भी—जिस स्थानमें, जिस मन्दिरमें बुरी बातोंको देखने–सुननेका मौका मिले, वहाँ जाना आप स्थगित कर दें। सर्वत्र आपको यदि यही मिलता हो तो आप जिस मकानमें हैं, उसीको प्रिया–प्रियतमका मन्दिर मानकर उसके कण–कणमें उनकी भावना कीजिये। वे वहाँ हैं ही; आपको इसलिये नहीं दीखते कि आप अभी उन्हें देखना नहीं

चाहते। किंतु यदि आपका मकान कहीं त्रुटियुक्त वातावरणसे भरा हो तो मैं तो यही कहूँगा कि आप वृन्दावन छोड़कर कहीं दूसरी जगह चले जाइये। बस, दूसरेकी ओर न देखकर आप अपनेको ही सुधारिये।

* *

व्रजमें रहते हुए जीवन श्रीप्रिया–प्रियतमके चरणोंमें न्योछावर होना चाहिये। इसीके लिये अधिक–से–अधिक चेष्टा होनी चाहिये। प्रपञ्चकी बात कम–से–कम सुनें एवं कहें। अपना अधिकांश समय भजन, पाठ, श्रीविग्रह–दर्शन, श्रीरास–दर्शन, लीला–श्रवण एवं प्रिया–प्रियतमके नाम–कीर्तन आदिमें ही बिताना चाहिये।

श्रीकृष्ण सच्ची चाहके मोलमें अपने–आपको बेच देते हैं

भगवच्चरणोंमें पूर्णरूपसे समर्पित हो जानेमें ही जीवनकी सार्थकता है। इसके लिये सब जगहसे सभी आसक्तियोंको खींचकर एकमात्र श्रीभगवान्‌में ही पूर्ण ममत्व स्थापित करें। थोड़ा विचार करके देखें तो पता चलेगा कि इस समय भी हमलोग वास्तवमें आंशिक रूपसे भगवान्‌के साथ जुड़े हैं। सोचिये संसारमें जो कोई भी मनुष्य आपको प्यारा लगता है, वह क्यों प्यारा लगता है ? यदि शरीर प्यारा होता तो जब इस शरीरसे चेतन निकल जाता है, तब भी वह प्यारा लगना चाहिये था। पर ऐसा होता नहीं। जहाँ चेतन इस शरीरसे निकला कि लोग इसे 'मुर्दा' नाम दे देते हैं, अपने प्यारेसे प्यारेका शरीर भी 'मुर्दा' हो जाता है। इसे हमलोग जला डालते हैं, नष्ट कर देते हैं; यहाँतक कि कई तो उस शरीरसे डरने लग जाते हैं। आपका शरीर भी आपको तभीतक प्यारा है, जबतक आप उस शरीरमें चेतनरूपसे हैं; आप जहाँ इससे निकले कि फिर इसे बिल्कुल भूल जाइयेगा। यह चेतन, जिसके रहनेसे स्त्री–पुत्र, भाई–बन्धु–मित्र आदिका शरीर प्यारा लगता है, श्रीकृष्णका ही अंश है। अतः यह सिद्ध हुआ कि असलमें हम श्रीकृष्णके अंशसे ही प्रेम करते हैं; क्योंकि अंशके न रहनेपर फिर हमारा उस शरीरसे प्रेम हट जाता है। भले ही पीछे रोये, पर स्त्री भी अपने मृतपतिके पास नहीं रहना चाहेगी। उससे कहिये—'अरे ! तुम्हारे पति हैं, इनके पास बैठो।' वह उत्तर देगी—'वे तो अब इस शरीरसे चले गये।' सारांश यह है—सभी आसक्तियाँ तभीतक हैं, जबतक श्रीकृष्णका अंश वहाँ मौजूद है। श्रीकृष्णका अंश छिपा कि आसक्ति भी छिपी।

अब फिर सोचिये, जिसका एक अंश आपको इतना मोहित कर रहा है, वे स्वयं पूर्णरूपमें यदि आपके सामने आयें तो कितने मोहनेवाले होंगे ! वे आ सकते हैं और आपके साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। केवल चाहनेकी ही देर है। श्रीकृष्णका मूल्य सच्ची चाह है। वे तो अनमोल हैं, पर सच्ची चाहके मोलमें अनमोल होकर भी अपने आपको बेच देते हैं। ऐसा बढ़िया सुन्दर सौदा है—अलभ्य, अनुपम, सर्वोत्कृष्ट सौदा है; पर हमलोग ऐसे अभागे हैं कि दिन–रात संसारके ही पदार्थोंमें—उनके (भगवान्‌के) क्षुद्र आंशिक प्रकाशमें ही रम रहे हैं और उन्हें (भगवान्‌को) नहीं चाहते। यह चाह हो कैसे ? महात्मा लोग, अनुभवी लोग कहते हैं कि यह चाह मलिन अन्तःकरणमें होनी असम्भव है। जैसे भी हो, अन्तःकरणको साफ करो; फिर सच्ची इच्छा जागेगी। अन्तःकरणको साफ करनेका इस युगमे एकमात्र सबसे सरल उपाय है—निरन्तर नाम–जप। यदि कोई चाहे, सचमुच चाहे तो—भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका कहना है—'भगवान् और प्रार्थना सुननेमें भले ही देर करें, पर भजन हो—यह प्रार्थना अवश्य–अवश्य सुन लेते हैं।' अब विचार कीजिये कि हमलोगोंको क्या करना चाहिये।

हृदयमें निरन्तर उनके लिये आसन तैयार कीजिये

प्रिया–प्रियतममें मन लगनेमें दृढ़ निश्चयकी कमी है। दृढ़ निश्चय करके हृदयका द्वारा उनके लिये खोलकर प्रतीक्षा कीजिये, फिर तो वे स्वयं प्रवेश कर जायँगे। वे आपके हृदयके द्वारपर न जाने कितनी बार आते हैं; पर द्वार बंद पाते हैं, अथवा खुला भी होता है तो वे देखते हैं कि उनके लिये तो वहाँ स्थान ही नहीं है। आदिसे अन्ततक, ऊपर–नीचे, बाहर–भीतर सर्वत्र संसार भरा है। फिर वे कैसे प्रवेश करें ? प्रवेश करें भी तो कहाँ ठहरें ? इसलिये आवश्यकता है कि द्वार खोल दें, अर्थात् सच्ची इच्छा मनमें जाग्रत करें कि मुझे एकमात्र प्रिया–प्रियतमकी आवश्यकता है, उनके अतिरिक्त मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये तथा उनके लिये हृदयमें स्थान बनाइये। हृदयमें निरन्तर उनका ही चिन्तन बना रहे, निरन्तर उनके लिये आसन तैयार होता रहे। भूल जाइये इस संसारको उसके स्थानपर स्मरण कीजिये—'कल–कल करती हुई कालिन्दी प्रवाहित हो रही हैं; तटपर परम मनोहर दिव्यातिदिव्य एक कुसुमित कदम्ब है। कदम्बके नीचे परम सुन्दर मणिमय वेदी है। उस वेदीपर कदम्बकी एम परम सुन्दर टहनी अपने कर–कमलमें धारण किये

श्रीयुगल–सरकार अवस्थित हैं। उनके श्रीअंगोंके सौन्दर्यसे कदम्ब, कालिन्दी, वन–उपवन––सभी उद्भासित हो रहे हैं। उनके अंग सुवाससे सारी वनस्थली सुवासित हो रही है, ऐसी झाँकीसे मनको निरन्तर भरते रहिये। फिर वे वन–विहार करते हुए आपके हृदयमन्दिरके द्वारपर पधारेंगे। उन्हें द्वार उन्मुक्त मिलेगा, वे झाँककर देखेंगे, सर्वत्र उन्हें अपनी ही छाया नाचती दीखेगी तथा कौतूहलवश वे उस छायाको केवल एक बार छू लेंगे। फिर तो छाया उन्हींका स्वरूप बन जायगी। आपके चिन्तनकी झाँकी वास्तविक दर्शनकी झाँकी बन जायगी। आप सदाके लिये कृतार्थ हो जायँगे। पर यह बातोंसे नहीं होता, करनेसे होता है।

भगवान्‌का प्रत्येक विधान कृपासे ही भरा होता है

जीवनमें एक बात कर लेनेपर सारा दुःख मिट सकता है। वह बात है––भगवान्‌की कृपालुतापर विश्वास कर लेना। सच मानिये––जैसे सूर्यमें अन्धकार देनेकी शक्ति नहीं, वैसे ही––विनोदकी भाषामें यह कहा जा सकता है कि भगवान्‌में किसीका अमंगल करनेकी शक्ति नहीं है। उनका प्रत्येक विधान कृपासे ही भरा होता है, चाहे उसका स्वरूप बाहरसे कितना भी भीषण क्यों न हो! इसलिये आप किसी भी परिस्थितिसे घबरायें नहीं। शरीर बीमार हो रहा है, यह बात बाहरसे बड़ी दुःखद प्रतीत होती होगी; किंतु इस बीमारीके पर्देमें प्रभुका कितना मंगलमय विधान काम कर रहा है––इसकी कल्पना भी आपको अथवा किसीको होनी कठिन है। इसके अतिरिक्त शरीरको जिस दिन जाना होगा, उस दिन लाख प्रयत्न करनेपर भी चला ही जायगा और उस निश्चित तिथिके पहले यह कभी जायगा भी नहीं। इसलिये शरीरके जानेकी चिन्ता तो सर्वथा छोड़ देनी चाहिये, बल्कि आप बराबर यह भावना करें––भगवान्‌का जो विधान होगा, वह मंगलके लिये होगा; उनके हाथमें मेरा जीवन समर्पित है, फिर मुझे क्या चाहिये।

यही सार है––यही करना है

जीवनका प्रत्येक क्षण श्रीप्रिया–प्रियतमके चिन्तनमें बीते, इसके लिये खूब सचेष्ट रहें। इस अनमोल जीवनके समाप्त होनेसे पूर्व ही श्रीप्रिया–प्रियतमको मनमें बसा लिया, तब तो सब कुछ कर लिया; नहीं तो सब कुछ करके भी जीवन व्यर्थ ही समाप्त हो गया––यह सर्वथा

सच्ची बात है।

भगवान्‌की स्मृति निरन्तर बनी रहे, इसीमें जीवनकी सफलता है। इसीके लिये चेष्टा करनी है।

अनमोल जीवनको दूसरोंकी पापमयी बातोंको देखने–सुननेमें मत खोइये। दूसरेके दोषोंकी ओरसे दृष्टि मोड़कर प्रिया–प्रियतमके चिन्तनमें मन लगाइये––यही सार है।

प्रिया–प्रियतमके रूप–सागरमें मनको डुबो दें, मनको उस सौन्दर्य–समुद्रमें सर्वथा मिलकर एकमेव हो जाने दें। फिर यह संसार नहीं दीखेगा, वे ही दीखेंगे। आपकी जलन सदाके लिये शान्त हो जायगी। यही करना है, यही करना चाहिये।

सच्ची इच्छा उत्पन्न होनका उपाय नामका जप है

मरनेके पहले–पहले अपनी ओरसे भगवान्‌के चरणोंमें पूर्ण समर्पणकी सच्ची इच्छा अवश्य हो जानी चाहिये; नहीं तो इससे अधिक हानि और कुछ भी नहीं है। ऐसी इच्छा उत्पन्न होनेका इस युगमें एकमात्र उपाय है––निरन्तर भगवान्‌के नामका जप। और कोई भी साधन बड़ा कठिन है। कंजूसके धनकी तरह एक क्षण भी व्यर्थ मत खोइये, निरन्तर नाम लीजिये।

केवल इतना ही करना है

आप वृन्दावनमें जाकर भी वृन्दावन–विहारीको नहीं देख पा रहे हैं, यह सचमुच विचारणीय है। आपको वृन्दावनविहारी न दीखकर अधिक समय दीखता है संसार। यही कारण है कि जैसा जीवन आपका होना चाहिये, वैसा नहीं हो पा रहा है तथा जबतक आप पूरी दृढ़तासे अपने जीवनकी धारा प्रिया–प्रियतमकी ओर मोड़ना नहीं चाहेंगे, तबतक कोई दूसरा ऐसा कर दे, यह सम्भव ही नहीं। यह आपको ही करना पड़ेगा। आज करें, मरते समयतक करें, कभी भी करें, करना आपको ही है। अतः अभीसे सावधान होकर यह कार्य कर लें तो अनर्थक दुःख, चिन्ता, फिकरसे बच जायँ। काम भी कठिन नहीं है। केवल इतना ही करना है––

१–कानसे प्रिया–प्रियतमकी चर्चाके सिवा दूसरा शब्द जहाँतक सम्भव हो, बिल्कुल नहीं सुनें।

२–आँखसे प्रिया–प्रियतमके सम्बन्धकी चीजोंके सिवा दूसरी वस्तु

यथासम्भव नहीं देखें।

३–वाणीसे 'राधाकृष्ण–राधाकृष्ण' की पुकार एक क्षण भी न छोड़े। बस, फिर जीवनकी धारा वृन्दावनविहारीकी ओर बह चलेगी। उस धारामें स्नान करते प्रिया–प्रियतम किसी दिन प्रकट हो जायँगे और आप निहाल हो जायँगे।

शरीरको भजनका साधन बनानेके लिये उसपर ध्यान रखना चाहिये

जीवनकी सफलता तो इसीमें है कि मन असत् शरीर आदिकी चिन्तन छोड़कर एकमात्र प्रिया–प्रियतमका ही चिन्तन करे, पर जबतक ऐसा नहीं हो जाता तबतक असत् शरीर आदिको भी भजनका साधन बनानेके लिये उसकी ओर कुछ–कुछ ध्यान रखना ही चाहिये। इसीलिये मैं चाहता हूँ कि सत्संगमें रहनेपर भी आपको अपने स्वास्थ्यका पूरा ध्यान रखना चाहिये; क्योंकि जबतक शरीरमें मोह है, तबतक हठसे की हुई स्वास्थ्यकी उपेक्षा कभी–कभी भले सफल हो जाय, अधिकांशमें पीछे बहुत ही तंग करने लगती है एवं पश्चात्तापका भी कारण बन जाती है।

बहुत समय बीत गया

बहुत समय बीत गया। अब वास्तवमें श्रीप्रिया–प्रियतमकी प्रीति प्राप्त हो, यह चेष्टा करनी चाहिये––

कहत–सुनत बहुतै दिन बीते, भक्ति न मन में आई।
स्याम–कृपा बिनु साधु–संग बिनु कहि कौनें रति पाई।।
अपने–अपने मत–मद भूले, करत आपनी भाई।
कह्यौ हमारौ बहुत करत हैं, बहुतनि में प्रभुताई।।
मैं समुझी, सब काहु न समझी, मैं सब इन समुझाई।
भोरे भक्त हुते सब तब के, हम तौ बहु चतुराई।।
हमही अति परिपक्व भए, औरनि कैं सबै कचाई।
कहनि सुहेली, रहनि दुहेली, बातनि बहुत बड़ाई।।
हरि मंदिर, माला धरि, गुरु करि जीवनि के दुखदाई।
दया, दीनता, दास–भाव बिनु मिलै न 'ब्यास' कन्हाई।।

खूब तेजीसे भगवान्‌की ओर बढ़िये

जीवन तो समाप्त होगा ही, चाहे विषयोंके संगमें बीते अथवा भगवान्‌के संगमें। भगवान्‌की ओर जितना बढ़ियेगा, उतनी शान्ति बढ़ेगी। उनको छोड़कर जगत्‌के किसी भी प्रपञ्चमें सुख खोजियेगा, जलन बढ़ेगी। आजतक जितने संत हुए हैं, वे सब–के–सब यही कह गये हैं। जीवनका भरोसा नहीं है, अतएव खूब तेजीसे भगवान्‌की ओर बढ़िये। अवश्य ही घबरानेकी जरूरत नहीं है। भगवान्‌की पूर्ण कृपा आपके साथ है।

साधनकी कसौटी

प्रिया–प्रियतमकी स्मृति कैसी और कितनी होती है––सारी साधनाकी कसौटी इसीमें है। यदि उनका विस्मरण हो तो समझना चाहिये कि पथ उलटा है, चाहे वह पथ कितना भी सुन्दर क्यों न दीखे; तथा यदि उनकी स्मृति बढ़ रही है तो पथ कितना भी कँटीला क्यों न दीखे समझना चाहिये, यही साधा पथ है।

* *

बस, निरन्तर नाम लीजिये; और कुछ भी नहीं करना है, सब भगवान् करेंगे।

शरीर ठीक रहते हुए ही इसका सुदपयोग कर लेना चाहिये

आपके जीवनका वही क्षण सार्थक है, जिस क्षण आप प्रिया–प्रियतमका चिन्तन करते हैं। चाहे उत्तम–से–उत्तम कर्म हो, पर यदि वह भगवत्–संयोगसे रहित है तो उसमें दोष आये बिना रह नहीं सकता। अतः कोई–सा काम करें, प्रिया–प्रियतमके चिन्तनको प्रधानता देकर ही करें।

जबतक शरीर काम देता है, तबतक इन्द्रियोंको, मनको आप इच्छानुसार भगवत्सम्बन्धमें नियोजित कर सकते हैं। पर पता नहीं, कब शरीर लाचार हो जाय, ऐसे समयमें बिना अभ्यास भगवच्चिन्तन होना बड़ा कठिन हो जाता है। उस समय शरीरकी पीड़ाका ही चिन्तन अधिकांश प्राणियोंको होता है। अतः शरीरकें ठीक रहते हुए ही इसका सदुपयोग कर लेना चाहिये।

एकमात्र श्रीकृष्णकी कृपा ही मनुष्यकी रक्षा करती है

देखें, मैं जब अपने जीवनको देखता हूँ तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट दीखती है कि मैं पग–पगपर फिसलता रहा हूँ और श्रीराधाकृष्ण मुझे पग–पगपर सँभालते रहे हैं। यदि वे न सँभालते तो न जाने जीवन किधर बह जाता। यदि श्रीराधाकृष्णने मुझे बचाया–सँभाला है तो किसीको मैं क्या बचाऊँगा ? बचानेवाले–सँभालनेवाले वे एक हैं। जगत्‌में मायासे पार हो जाना सचमुच बड़ा ही कठिन है। मेरी तो ऐसी ही दृढ़ धारणा है कि जिसे श्रीराधाकृष्ण निकालेंगे, वही मायासे निकल सकता है; अपना पुरुषार्थ तनिक भी काम नहीं दे सकता। जिस समय विषयोंका प्रलोभन आता है सारा विवेक निष्फल हो जाता है। एकमात्र श्रीकृष्णकी कृपा ही मनुष्यकी रक्षा करती है। इसलिये हमलोगोंको चाहिये कि चिन्ता बिल्कुल छोड़ दें। जिस दिन श्रीराधाकृष्ण चाहेंगे, उस दिन ही मनुष्य विषयोंसे मुख मोड़ सकता है। एक बात और है––जिसने श्रीकृष्णकी शरण ली है, किसी–न–किसी दिन श्रीकृष्ण उसका अवश्य उद्धार करेंगे ही।

भजनके लिये काम छोड़नेकी आवश्यकता नहीं

भजनका सम्बन्ध मनसे है। काम छोड़नेपर भी मन तो साथ छोड़ेगा नहीं। जो मन आज है, वही फिर भी तरह–तरहके धोखेसे भजनसे हट सकता है। इसलिये पहले कुछ दिन अलग रहकर अच्छी तरह भजनका अभ्यास करके देखना चाहिये। भजनमें मन लग जाय तो फिर सारे संसारका काम भले ही चौपट हो जाय, कोई हानि नहीं। पर भजनमें मन न लगकर प्रमादका जीवन न बने––इस विषयमें विशेष सावधान रहना चाहिये।

और क्या चाहिये ?

आप सत्संगसे पूरा–पूरा लाभ उठानेकी चेष्टा कर रहे हैं, सो अच्छी बात है। आपको अब करना ही क्या है ? भजन और सत्संगमे ही तो शेष जीवन बिता देना है। फिर उसमें उत्साहकी कमी तो आनी ही नहीं चाहिये। संतोंका संग हो, नाम–जप हो तथा भगवान्‌के रूपकी झाँकी होती रहे, बस, और क्या चाहिये ?

मनको एकमात्र प्रिया–प्रियतमकी ओर केन्द्रित करें

सत्संगसे पूरा–पूरा लाभ उठाना चाहिये। पूरा लाभ यही है कि मन भगवान्‌में पूर्णतया लग जाय; सब ओरसे प्रीति हटकर एकमात्र प्रिया–प्रियतमकी ओर केन्द्रित हो जाय––

नरक–स्वर्ग–अपवर्ग–आस नहिं त्रास है।
जहँ राखौ तहँ रहौं मानि सुखरास है।।
देव ! दया करि दान 'न भूलौं केलि' को।
भगवत बलित तमाल बिलोकौं बेलि को।।
दुख–सुख भुगते देह, नहीं कछु संक है।
निंदा–अस्तुति करौ राव क्या रंक है।।
परमारथ ब्यौहार बनौ कै ना बनौ।
अंजन है मम नैन रसिक भगवत सनौ।।

एक ही परामर्श !

मैं तो आपको एक ही परामर्श देता हूँ––प्रिया–प्रियतमको कम–से–कम पाँच मिनटपर तो याद कर ही लें।

जैसे हो, वैसे प्रिया–प्रियतमकी अखण्ड स्मृति बनी रहे, यही करना है। आप अवश्य करें––यही मेरा सप्रेम अनुरोध है।

वे आपकी भी सुन सकते हैं, यदि आप उन्हें सुनाना चाहें

यदि सच्ची चाह हो तो भगवान्‌की दयासे निरन्तर नामजप होना खूब आसानीसे सम्भव है। इसलिये आप मनसे श्रीकृष्णके आगे अपनी चाह प्रकट कीजिये; फिर देखिये भजन अवश्य होगा। मनमें कुछ रखकर ही प्रायः लोग प्रार्थना करते हैं; इसलिये भगवान् भी देखते हैं––'अभी ठीक चाह हुई नहीं, चलो, अभी टाल दूँ।' यदि हृदयकी सारी शक्तिसे भगवान्‌के सामने कोई एक बार भी रोने लगे तो फिर भगवान् उसी क्षण असम्भवको भी सम्भव कर देते हैं। इसलिये आपसे भी प्रेमपूर्वक प्रार्थना है कि निरन्तर नामजपकी सच्ची चाह लेकर आप श्रीकृष्णके सामने रोज नियमित रूपसे प्रार्थना करें। जिस दिन प्रार्थना हृदयसे होगी, उसी क्षणसे भजन होने लगेगा। श्रीकृष्णपर भरोसा करके मनसे उनको कहिये–लिखिये। वे सबकी सुनते हैं और आपकी भी सुन

सकते हैं, यदि आप उन्हें सुनाना चाहें।

खूब तेजीसे भगवान्‌की ओर बढ़िये

जीवन तो समाप्त होगा ही, चाहे विषयोंके संगमें बीते अथवा भगवान्‌के संगमें। भगवान्‌की ओर जितना बढ़ियेगा, उतनी शान्ति बढ़ेगी। उनको छोड़कर जगत्‌के किसी भी प्रपञ्चमें सुख खोजियेगा, जलन बढ़ेगी। आजतक जितने संत हुए हैं, वे सब–के–सब यही कह गये हैं। जीवनका भरोसा नहीं है, अतएव खूब तेजीसे भगवान्‌की ओर बढ़िये। अवश्य ही घबरानेकी जरूरत नहीं है। भगवान्‌की पूर्ण कृपा आपके साथ है।

यही सार है––यही करना है

जीवनका प्रत्येक क्षण श्रीप्रिया–प्रियतमके चिन्तनमें बीते, इसके लिये खूब सचेष्ट रहें। इस अनमोल जीवनके समाप्त होनेसे पूर्व ही श्रीप्रिया–प्रियतमको मनमें बसा लिया, तब तो सब कुछ कर लिया, नहीं तो सब कुछ करके भी जीवन व्यर्थ ही समाप्त हो गया––यह सब सर्वथा सच्ची बात है।

भगवान्‌की स्मृति निरन्तर बनी रहे, इसीमें जीवनकी सफलता है। इसीके लिये चेष्टा करनी है।

अनमोल जीवनको दूसरोंकी पापमयी बातोंको देखने–सुननेमें मत खोइये। दूसरेके दोषोंकी ओरसे दृष्टि मोड़कर प्रिया–प्रियतमके चिन्तनमें मन लगाइये––यही सार है।

प्रिया–प्रियतमके रूप–सागरमें मन डुबा दें, मनको उस सौन्दर्य–समुद्रमें सर्वथा मिलकर एकमेव हो जाने दें। फिर यह संसार नहीं दीखेगा; वे ही दीखेंगे। आपकी जलन सदाके लिये शान्त हो जायगी। यही करना है, यही करना चाहिये।

मेरी इतनी ही सलाह है

मेरी इतनी ही सलाह है कि सत्संगमें जो कुछ भी सुनें, उसको प्रिया–प्रियतमके अखण्ड स्मरणमें परम सहायक बना लें। बस, इससे अधिक मैं क्या लिखूँ––

तनहिं राखु सत्संगमें, मनहि प्रेमरस भेव।
सुख चाहत हरिबंसहित, कृष्ण–कल्पतरु सेव।।

निकसि कुंज ठाढ़े भए, भुजा परस्पर अंस।
राधाबल्लभ–मुख–कमल, निरखत हित हरिबंस।।
सबसों हित निहकाम मन, बृन्दाबन बिश्राम।
राधाबल्लभ लाल कौ, हृदय ध्यान, मुख नाम।।
रसना कटौ जु अनरटौ, निरखि अन फुटौ नैन।
सवन फुटौ जो अनसुनौ, बिनु राधा जसु बैन।।

* *

और सबसे अन्तिम बात यह है कि निरन्तर नाम लीजिये; और कुछ भी नहीं करना है, सब भगवान् करेंगे।

संतोंसे सुना है—'दूसरा क्या करता है, इस ओर मत देखो; तुमसे कितने पाप होते हैं, यह देखो।' निष्पाप होनेका यह सरल साधन है। यदि तुम्हारे मनमें जलन नहीं है, तुम्हारा मन साफ, शान्त है तो समझो कि पाप कम बन रहे हैं; पर यदि जलन अधिक है तो पाप अधिक बन रहे हैं। तुम्हारा पाप ही तुम्हें जलाता है, भले ही निमित्त कुछ भी, कोई भी क्यों न हो। यदि तुम भगवान्‌को याद करोगे; अपने पापोंके लिये पश्चात्ताप करोगे तो संचित पापकी ढेरी जलने लगेगी और तुम्हारे मनकी जलन कम होने लगेगी।

भगवान्‌की शरण हो जाओ। उनका नाम लो। उनके सामने अपने सब पापोंको खोलकर रख दो। फिर वे कहेंगे कि 'चिन्ता तुम मत करो।'

कहींपर भी रहकर भजन तो हो ही सकता है। उत्कट चाह होनेसे ही भजन होगा। यह ठीक है कि संग भजनमें बड़ा सहायक होता है; पर वह तो अपने हाथकी बात नहीं। कड़ा नियम लेनेसे कुछ–न–कुछ भजन बनेगा ही; अतः कुछ मालाओंका नियम अवश्य लें।

* *

आप प्रभुसे प्रार्थना करते हैं—'हे नाथ! अशुद्ध वातावरणसे निकलकर चिन्तनमय वातावरणमें रखो; परंतु विशुद्ध एवं सच्ची प्रार्थना न होनेके कारण प्रभुकी ओरसे जवाब नहीं मिलता।' आपका यह मानना ठीक है, पर जिस–किसी भी प्रकारसे प्रभुसे जुड़े रहनेका मंगलमय फल आगे चलकर अवश्य प्राप्त होता है। अतः इस प्रकारक बहानेसे भी प्रतिदिन प्रभुसे कुछ समय यदि जुड़े रहेंगे तो बड़ा लाभ होगा। उनकी कृपा झूठी प्रार्थनाको भी निमित्त मानकर प्रार्थना करनेवालेको ऊपर खींच लेती है। अतः प्रार्थना करते चले जायँ। बस,

भगवान्‌की कृपापर विश्वास कीजिये और उन्हें रो–रोकर पुकारिये, किसी–न–किसी दिन वे सुनेंगे ही।

श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसारजी पोद्दार) ने एक बार सत्संगमें कहा था—"हमलोग किसीके मरनेपर रोते हैं कि 'हाय ! वह हमें छोड़कर चला गया'; परंतु रोना तो चाहिये इसलिये कि वह बिना भजन किये हुए ही मर गया और उसका मनुष्य बनना व्यर्थ हो गया।" श्रीभाईजीके ये वचन बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। अतएव हमें ऐसी चेष्टा रखनी चाहिये कि अपने परिवारका अपना स्वजन, आत्मीय—कोई भी बिना भजन किये न मरने पाये। इसके लिये यह आवश्यक है कि हम इस बातका पूर्ण ध्यान रक्खें कि अपनेसे सम्बद्ध कोई भी व्यक्ति भजनके बिना न रहे। परिवारमें जो कोई भी हों अथवा जो कोई भी हमसे अपना सम्बन्ध मानते हों, उन सबको हम भगवान्‌की ओर प्रवृत्त करें। ऐसा करनेपर परिवारके सदस्य हमें किसी सरायमें विभिन्न अनिश्चित गन्तव्य स्थानोंको जानेके लिये ठहरे हुए यात्री अनुभव नहीं होंगे; हमें अनुभव होगा, जैसे एक ही मालिकके आश्रित एक ही गन्तव्य स्थान—अपने घरकी ओर जाते हुए व्यक्ति किसी धर्मशालाकी कोठरियोंमें ठहरे हुए हों। वस्तुतः यही सम्बन्ध वास्तविक है, यही वाञ्छनीय है।

सत्संगकी एक ही बात है—प्रिया–प्रियतमका अखण्ड स्मरण करें। जागते–सोते, स्वप्न देखते—प्रत्येक समय मनकी वृत्ति उन्हींमें समायी रहे। आकाश, जल, थल, वन, उपवन, मनुष्य, पशु, पक्षी—जहाँ कहीं भी हमारी दृष्टि जाय, वहाँ हमारी आँखें प्रिया–प्रियतमको विराजित देखें। जो भी शब्द हमारे कानोंमें प्रवेश करे, उसमें प्यारे श्यामसुन्दरका वंशीनाद, वृन्दावनकी रानी भानुकिशोरीका मधुर नूपुर–रव भरा प्रतीत हो। प्राण उनके श्रीअंगसे सुवासित पवनकी गन्ध पाकर सदा मत्त रहें। कुछ भी स्पर्श होनेपर उनके चरणारविन्दसे झरते हुए मधुर परागका सुकोमल स्पर्श–सुख प्राप्त होने लगे। रसनेन्द्रिय उनके अधरामृतसिक्त वस्तुका ही आस्वाद ले। इस प्रकार हमारी पाँचों इन्द्रियाँ उनमें तन्मय हो जायँ। बस, इसीमें जीवनकी सफलता है। इससे बढ़कर सत्संगकी—भगवद्विषयक बात और क्या हो सकती है ?

* *

निरन्तर श्रीकृष्णकी कृपाका आश्रय करके अधिक–से–अधिक उनका नाम लेनेकी चेष्टा करें; फिर जो होगा, मंगल ही होगा। अभी भी जो कुछ

हुआ है, हो रहा है, वह सभी मंगल ही हो रहा है, किंतु यह आपको, हमको दीखता नहीं। भजन करनेसे यह स्पष्ट प्रत्यक्ष हो जायगा।

श्रीकृष्णका भरोसा रखिये, फिर कोई चिन्ता नहीं। वे बड़े दयालु हैं। प्रेम मनकी चीज है। बोलने और न बोलनेसे प्रेम बढ़ता अथवा घटता हो, ऐसी बात नहीं है। आप अपने बाहरी व्यवहारमें ऐसी चेष्टा करें, जिससे घरवालों अथवा अन्य लोगोंको कोई उद्वेग उत्पन्न न हो और मनमें परस्पर निस्स्वार्थ और पवित्र प्रेम रखें। जिस प्रेममें मिलावटकी आवश्यकता है, वह तो प्रेम ही नहीं है।

* *

सत्संगके पवित्र वातावरणमें रहकर ऊँचा–से–ऊँचा लाभ उठावें––यही करना है। मनसे निरन्तर भगवान्‌का स्मरण, जीभसे आवश्यकताभर बात करनेके बाद निरन्तर नाम–जप तथा शरीरसे भगवद्रूप संतोंकी––समस्त प्राणियोंकी सेवा––यही सत्संगका सच्चा लाभ है। इसमें कसर नहीं आने पावे।

* *

भगवान्‌के भक्तको किसी भी परिस्थितिमें निराश नहीं होना चाहिये। आप विश्वास रखें, मंगलमय प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलसे भरा होता है––आप यह विश्वास अपने मनमें दृढ़ करें तथा अत्यन्त साहसपूर्वक अपने चित्तको शान्त करनेकी चेष्टा करें। उद्विग्नतासे कोई लाभ नहीं होता।

* *

भगवान् श्रीकृष्ण जिस प्रकार रखना चाहते हैं, उसीमें अतिशय प्रसन्न रहना चाहिये। आपकी कोई परिस्थिति बहुत प्रतिकूल दीखनेपर भी उसीमें आपका मंगल निहित है। प्रतिकूल–से–प्रतिकूल वातावरणको भगवान्‌का प्रसाद समझकर अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे उसमें रहना चाहिये।

* *

आप व्रजमें निवास कर रहे हैं, यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है। व्रजमें रहते हुए भी आप बुखारके कारण भगवान्‌के रासके दर्शनसे वञ्चित हो गये, इससे मनमें व्यथा होनी स्वाभाविक है; पर यदि आप इस बुखारके तापको भगवद्विरहके तापमें बदल सकें तो रासका फिर ऐसा दर्शन हो जाय कि उसके बाद आपकी आँखें कुछ दूसरी वस्तुको देखेंगी ही नहीं। आप बड़े भाग्यवान हैं कि बुखारकी अवस्थामें भी आपका मन श्रीरास–दर्शनके लिये

तड़पता है। श्रीराधारानी ऐसी कृपा करें कि दर्शन भले मत हो, पर दर्शनके लिये तड़पन उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाय। रसिक प्रेमी भक्त मिलनेसे भी अधिक वियोगको महत्त्व देते हैं। यह तो हुई पारमार्थिक दृष्टिकी बात। व्यावहारिक दृष्टिकी बात यह है कि चिन्ता तो बिल्कुल नहीं करनी चाहिये, पर यथायोग्य औषध एवं पथ्यका सेवन करना चाहिये। व्रजको छोड़कर अन्यत्र जानेकी सलाह तो मैं कदापि नहीं दे सकता।

* *

अनन्त सौभाग्यसे श्रीव्रजधाममें आप निवास कर रहे हैं। शरीर तो श्रीधाममें है ही, अब मनमें श्रीधाम बस जाय, इतनी भिक्षा आप राधारानीसे और माँगिये। अनन्त असीम अनुरागकी धारा निरन्तर श्रीधाममें प्रवाहित हो रही है। मनको उस धाराके सामने कर दें, फिर अपने–आप अनुरागका एक स्रोत मनमें प्रविष्ट हो जायगा तथा मन अनुरागमय होकर श्रीधामसे एकमेव हो जायगा। फिर देखेंगे—

अज गोपाल रास–रस खेलत
पुलिन कल्पतरु तीर री, सजनी।
सरद बिमल नभ चंद बिराजत,
रोचक त्रिबिध समीर री, सजनी।।
चंपक बकुल मालती मुकुलित,
मत्त मुदित पिक–कीर री, सजनी।
लेत सुधंग राग–रागिनि कौ,
ब्रज जुबतिन को भीर री, सजनी।।
मघवा मुदित निसान बजायौ,
ब्रत छाँड्यौ मुनि धीर री, सजनी।
(जै श्री) हित हरिबंस मगन मन स्यामा,
हरत मदन धन पीर री, सजनी।।

* *

अधिक–से–अधिक नाम जपिये और श्रीकृष्णके भरोसे बैठे रहिये, इससे बढ़कर उत्तम सलाह मेरे पास है नहीं। और क्या बताऊँ।

बस, निरन्तर प्रिया–प्रियतमकी स्मृति बनी रहे––यही करना है।

——❀——

परिशिष्ट

व्रजलीलामें गाय

सुर–वनिताओंकी वीणाविनिन्दित स्वलहरी अन्तरिक्षको चीरकर नन्दप्रांगणके मणिमय स्तम्भोंमें प्रतिध्वनित हो उठी—

रिंगणकेलिकुले जननीसुखकारी।
व्रजदृशि सुकृतस्फुरदवतारी।
वलियतबाल्यविलास ! जय बलवलित ! हरे ! •

नन्दरानी चकित–सी होकर एक क्षणके लिये आकाशकी ओर देखने लगीं। पर उनकी आँखें तो अपने नयनानन्द प्राणाराम हृदयधन नीलमणिकी छबिसे निरन्तर परिव्याप्त थीं। उन्हें वहाँ भी उस नीले गगनके वक्षःस्थलपर भी दीखा—

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत, रेनु–तन–मंडित, मुख दधि–लेप किये।।
चारु कपोल, लोल लोचन छबि, गोराचनको तिलक दिये।
लटलटकन मनों मत्त मधुपगन मादक मधुहि पिये।।
कठुला कंठ, बज्र केहरि नख राजत है सखि रुचिर हिये।
धन्य सूर एकौ पल यह सुख कहा भयो सत कल्प जिये।।

नीलमणि श्यामसुन्दरके अरुण करपल्लवमें उज्ज्वलतम नवनीत है; नवनीरद श्रीअंगोंको नचा–नचाकर घुटरुँअ चलते हुए वे घूम रहे हैं; प्रांगणके बड़भागी धूलिकणोंसे श्यामल अंग परिशोभित है; अरुण अधर तथा ओष्ठ धवल दधिसे सने हैं; सुन्दर कपोल एवं चञ्चल नयनोंकी शोभा निराली ही है; उन्नत ललाटपर गोरोचनका तिलक है; मनोहर मुखारविन्दपर घनकृष्ण केशोंकी घुँघराली

लटें लहरा रही हैं; लटें ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो भ्रमर हों, श्यामसुन्दरके मनोहर मुखारविन्दका मधुर मधुपान करने आये हों, मधु पीकर मत्त हो गये हों, सुध–बुध भूले हुए, अरविन्दपर अरबरा रहे हों; कमनीय कण्ठमें कठुला शोभा पा रहा है; विशाल हृदयपर व्याघ्रनख आदि टोना–निर्वारक वस्तुओंसे निर्मित माला झूल रही है। एक ओर इस छविके क्षणभर दर्शनका आनन्द तथा दूसरी ओर सैकड़ों कल्पोंका समस्त जीवन–सुख, इन दोनोंकी तुलनामें वह एक क्षण ही धन्य है, कल्पोंका जीवन तुच्छातितुच्छ सर्वथा व्यर्थ––अनर्थ है।

नन्दरानीने आकाशसे दृष्टि हटा ली तथा वह आँगनमें किलकते हुए नीलमणिको पुनः देखने लग गयी। आँखोंके कोयोमें आनन्दाश्रु छलक आये। यही दशा व्रजनरेश नन्दराजकी भी थी, जो कुछ ही दूरपर खड़े हुए अपने पुत्रकी रिंगण–लीला निर्निमेष नयनोंसे निहार रहे थे।

अग्रज दाऊ पास ही बैठे आनन्दाम्बुधिमें आकण्ठ निमग्न थे। उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी। कभी आगे कभी पीछे रहकर छायाकी तरह वे श्यामसुन्दरका अनुगमन करते थे। दोनों भाई परस्पर अस्पष्ट कुछ बोलते और दोनों ही खिलखिलाकर हँस पड़ते थे। थोड़ी देर घुटरूँ चलकर अपने ही नूपुरकी रुनझुन ध्वनिसे चकित हो जाते, स्निग्ध गम्भीर मुद्रामें कुछ क्षण सोचने–से लगते फिर आगे बढ़ते, फिर रुनझुन शब्द होता, फिर ठिठक जाते। ठहरते ही मणिमय आँगनमें मनोहर मुखकमल प्रतिबिम्बित हो जाता और विस्फारित नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगते। कभी उसे पकड़नेके उद्देश्यसे उसके सिरपर हाथ रख देते। हाथका व्यवधान आनेसे प्रतिबिम्ब लुप्त हो जाता, श्यामसुन्दर आश्चर्य भरी मुद्रामें जननीकी ओर देखने लगते।

इस प्रकार बाललीलाधारी गोलोकविहारीकी अभिनव रिंगणलीला प्रारम्भ हुई तथा प्रतिक्षण नयी–नयी होकर बढ चली। यह कोई प्राकृत शिशुका स्वभावजात घुटरुन तो था नहीं कि जिसकी निश्चित सीमा हो। यह तो स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके चिदानन्दमयस्वरूपभूत

• ये नन्दनन्दन बकैयाँ चलते हुए अपनी विविध क्रीडाओंसे माता यशोदाको आनन्दित करते हैं **तथा व्रजवासियोंके** अपूर्व सौभाग्यसे ही उनके नेत्रोंके सामने स्वयं **अवतारी ही स्फुरित** हुए हैं। विविध वात्सल्यसे युक्त बलरामजी सहित श्रीकृष्णकी **जय** हो।

रससागरका एक तरंग–विशेष था। चन्द्रकलाकी भाँति जिस अनुपातसे वात्सल्य–स्नेहवती माता यशोदा एवं अन्य व्रजसुन्दरियोंकी भावनाएँ बढ़ रही थीं, उसी अनुपातसे उस अचिन्त्य–अनन्त चिन्मय–रस–सार–सुधा समुद्रमें सरल वक्र और तीक्ष्ण तरंगे उठ रही थीं। बालकृष्णके घुटरूँ चलनेका समाचार विद्युतकी तरह समस्त गोष्ठमें फैल चुका था। यूथ–की–यूथ भाग्यवती व्रज–वनिताएँ प्रतिदिन नन्दद्वारपर एकत्र हो जातीं तथा उस अनुपम लीलारस–सुधाका अतृप्त पान करके बलिहार जातीं। सबका अलग–अलग हृदय था, सबकी अपनी–अपनी भावनाएँ थीं, सभी अपनी भावनाके अनुरूप लीलाका रस लेती थीं। रस लेती–लेती रसके तीव्र स्रोतमें वे बह जातीं, न जाने किन–किन मधुमय अभिलाषाओंको अन्तस्तलमें छिपाये बहतीं। इन सबका प्रतिबिम्ब श्यामसुन्दरके हृदयपर पड़ता एवं सबकी रुचिके अनुकूल सर्वसुखदायिनी अत्यन्त मनोहारिणी लीलाका प्रकाश होता। श्यामसुन्दरमें कितना ज्ञान हुआ है, इसका रस लेनेवालीके लिये वैसी लीला होती। गोपी पूछती—नीलमणि ! ब्रेरा मुख कहाँ है ? उत्तरमें नीलमणि मनोहर मुखपर अपनी अँगुली रख देते। आँख कहाँ है ? नीलमणि काजल लगे हुए नयनकमलोंको दोनों कर–कमलोंकी नन्हीं–नन्हीं अँगुलियोंसे मूँदकर गोपीकी ओर मुँह करके बैठ जाते। अच्छा लल्ला ! नाक क्या वस्तु है ? नन्दनन्दन प्राणायामकी मुद्रामें नाकका स्पर्श करते।

वाह वाह ! मेरे प्राण–धन ! अच्छा इस बार कान और चोटी तो मुझे दिखा दे। श्रीकृष्ण चटपट कानोंको छूकर दोनों हाथोंसे शिखाके स्थानको दबाकर सिर हिलाने लगते। गोपी आनन्दमें डूब जाती—

क्वननं क्व नयनं क्व नासिका
क्व श्रुतिः क्व च शिखेति ·केलितः।
तत्र तत्र निहितांगुलीदलो
वल्लवीकुलमनन्दयत्प्रभुः ।।

कोई गोपी देखना चाहती यशोदानन्दनमें खड़े होनेकी शक्ति आयी है या नहीं। उसके लिये व्रजेन्द्रनन्दन धीरे–धीरे उठ खड़े होते। चार–पाँच पग चलकर गिर पड़ते। किसी व्रजवनिताके मनमें आता, 'यह सलोना साँवरा बोल सकता है या नहीं ? उसके मनोरथकी पूर्तिके लिये दोनों भाई परस्पर अस्फुटस्वरमें कुछ बोल जाते; गोपीका हृदय आनन्दसे उछलने लगता। इस तरह लीलामयके लीलारसप्रवाहसे समस्त व्रज प्लावित हो

गया। फिर भी व्रजवनिताओंकी आँखें तृप्त नहीं होतीं। उत्तरोत्तर मधुरातिमधुर लीला देखनेकी चाह बढ़ती ही जाती। अतः एक ही साथ सबको वात्सल्य–रस–सिन्धुमें डुबो देनेके उद्देश्यसे एक अत्यन्त मधुर बाललीलाका आस्वादन करनेकी इच्छा श्यामसुन्दरके मनमें जाग्रत हुई। इच्छाकी देर थी, अचिन्त्यलीलामहाशक्तिने तत्क्षण व्रजराजनन्दनको उसी साजसे सजा दिया और लीला प्रारम्भ हो गयी।

व्रजराज गोशालामें बछड़ोंकी सँभाल करने गये हैं और व्रजरानी अपने प्राणधन ललनके लिये भोजन बनानेमें संलग्न हैं। राम–श्याम दोनों भाई आँगनमें खेल रहे हैं। अबतक दोनों भाई मैया एवं बाबाकी गोदमें चढ़कर ही द्वारदेश एवं गोशाला आदिमें जाते थे। आज स्वतन्त्ररूपसे दोनों भाई तोरणद्वारकी ओर चल पड़े। कभी खड़े होकर कुछ डग चलते, कभी घुटनोंके बल। इस तरह बाहर चले आये। आम्रकी शीतल छायामें कुछ गोवत्स विश्राम कर रहे थे। धीरे–धीरे उनके पास जा पहुँचे। बछड़ेकी सुकोमल पूँछको देखकर आश्चर्यचकित–से होकर विचारने लगे, यह क्या है ? फिर दोनों भाइयोंने अपने नेत्रकमलको किञ्चित् नचाकर मानो कुछ परामर्श–सा किया और धीरेसे एक ही साथ पूँछको दोनों हाथोंसे मुट्ठी बाँधकर पकड़ लिया। अचानक पूँछ खिंच जानेसे बछड़ा उठ खड़ा हुआ तथा भागने लगा। अचिन्त्यलीलामहाशक्तिने इसी क्षण श्यामसुन्दरकी स्वाभविक अनन्त असीम सर्वज्ञतापर बाललीलोचित मुग्धताकी यवनिका गिरा दी। दोनों भाई बछड़ेसे खिंचे जाते हुए भयभीत हो उठे। जिसके अनन्तानन्त ज्ञानभण्डारके एक क्षुद्रतम कण–ज्ञानसे समस्त विश्वमें कर्तव्याकर्तव्य–ज्ञानका सञ्चार होता है, वे भगवान् श्रीकृष्ण यह ज्ञान भूल गये कि पूँछ छोड़ देनेसे ही बछड़ेका सम्बन्ध छूट जायगा, बल्कि उन्होंने तो अपनी रक्षाके लिये और भी अधिक शक्ति लगाकर पूँछको जकड़ लिया तथा मा–मा ! बाबा–बाबा ! पुकारकर रोने लगे ! उसी क्षण समस्त व्रजवनिताओंकी हृदय–वीणापर मा–मा, बाबा–बाबाकी करुणामिश्रित स्वरलहरी झंकृत हो उठी, क्योंकि उनके हृत्तन्तु सर्वथा श्याममय होकर निरन्तर श्यामसुन्दरसे ही जुड़े रहते थे। अतः जो जहाँ जिस अवस्थामें थी, चल पड़ी। इतनी शीघ्र कैसे आ पहुँची, यह किसीने नहीं जाना, पर सभी आ पहुँची। सबने देखा, भयभीत गोवत्स धीरे–धीरे भाग रहा है तथा उसकी पूँछ पकड़े नीलमणि एवं दाऊ मा–मा, बाबा–बाबाकी पुकार करते हुए खिंचे चले जा रहे हैं। अचिन्त्यलीला–शक्तिके महान् प्रभावसे कुछ क्षण सभी

किंकर्तव्यविमूढ़–सी हो गयीं। इसी समय उपनन्द–पत्नीने शीघ्रतासे बछड़ेके आगे जाकर उसे थाम लिया। इतनेमें नन्दरानी एवं नन्दराय भी आ पहुँचे। 'बेटा नीलमणि ! दाऊ ! पूँछ छोड़ दे, पूँछ छोड़ दे' कहते हुए दोनोंने हाथोंसे पकड़कर पूँछ छुड़ा दी। नन्दरानीने नीलमणि दोनोंको अपनी गोदमें ले लिया, दोनोंका मुख चूमने लगीं। इधर व्रजसुन्दरियोंमें हँसीका स्रोत उमड़ पड़ा, बाललीलाविहारीकी इस अद्भुत अभूतपूर्व ललित लीलाको देखकर सभी हँसते–हँसते लोट–पोट हो गयीं। एक ग्वालिन बोली—'नीलमणि ! अरे दाऊ ! तुम दोनों भला इस बछड़ेसे भी दुर्बल हो ! अरे, पूँछ पकड़कर बछड़ेको रोक लेते या पूँछ पकड़े–पकड़े सारे व्रजमें घूम आते, यह बछड़ा तुम्हें व्रजमें घुमा लाता। हमलोग अपने–अपने घरही पर तुम्हें देखकर निहाल होतीं, बछड़े भी निहाल होते।' यों कहते–कहते ग्वालिनकी आँखोंमें प्रेमके आँसू छलछल करने लगे।

श्यामसुन्दर हँसने लगे, मानो संकेतसे कह रहे हैं—'एवमस्तु।' इसके पश्चात् भक्तवाञ्छाकल्पतरु व्रजराजनन्दनने बछड़ोंको अपने करस्पर्शका योगीन्द्रमुनीन्द्र–दुर्लभ आनन्द देते हुए इस परम सुन्दर लीलाका अनेकों बार प्रकाश किया।

दोनों भाई बछड़ोंकी पूँछ पकड़ लेते; बछड़ा भागता, कुछ दूर तो पीछे–पीछे खिंचते हुए चले जाते; फिर पूँछ छूट जाती तो किसी दूसरेकी पकड़ लेते; दूसरेकी छूटनेपर तीसरेकी। कभी एक ही साथ तीन–चार बछड़ोंकी पूँछ पकड़ते; बछड़े कूदते और श्यामसुन्दर हँसने लगते। कितने ही बछड़े स्वाभाविक प्यारवश श्यामसुन्दरकी इच्छानुसार उन्हें खींच ले जाते। आगे–आगे करस्पर्शके आनन्दसे पुलकित होता हुआ बछड़ा और पीछे–पीछे पूँछमें टँगे हुए व्रजनयनाननन्द पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण एवं दाऊजी। व्रजदेवियाँ इस परम मनोहर लीलाको देखकर आनन्दसे हँसते–हँसते आत्मविस्मृत हो जातीं। उनका गृह, गृह–कार्य, सब कुछ छूट जाता—

यर्ह्यंगनादर्शनीयकुमारलीला वन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः।
वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः।।

(श्रीमद्भा० १०। ८। २४)

(२)

दही बिलोती हुई एक व्रजसुन्दरी धीमे–धीमे गा रही है—

बलकृष्णौ बलवलितविलासौ

खेलत इह सखि ! सखिकृतहासौ ।। ध्रु० ।।
तर्णकपुच्छधृतिव्यापृतिनौ प्रणयकलितकलिकलने कृतिनौ ।।
(श्रीगोपालचम्पूः)

'सखि ! देख, दाऊको साथ लिये बालकृष्ण खेल रहा है। कुछ सखा भी साथ हैं, सभी उसकी मधुमयी लीला देख–देखकर हँस रहे हैं। अहा ! देख बहन ! उसी दिनकी तरह आज भी दोनों पुनः बछड़ेकी पूँछ पकड़े हैं। सचमुच बहन ! ये दोनों अब बड़े चञ्चल हो गये हैं, लोगोंको खिझाना सीख गये हैं। आह ! उस दिन मैयासे कलह करते हुए तुमने इन्हें देखा नहीं ? ओह ! इनकी प्रेम–कलह अद्भुत ही है, इस कलामें ये दोनों ही बड़े प्रवीण हो गये हैं।'

व्रजसुन्दरियाँ अन्य समस्त कर्म, समस्त उपासनाएँ भूल गयीं। उनके लिये तो अब सम्पूर्ण उपासनाओंका सारसर्वस्व एक यशोदानन्दन ही बन गये हैं। सारा दिन, सारी रात उनकी आँखोंके सामने बाललीला–रसमत्त परमानन्दकन्द नन्दनन्दन नयनाभिराम नित्य नयी छटामयी छबि ही नाचती रहती है। दिनका अधिकांश भाग वे नन्दद्वारके समीप खड़ी रहकर बिता देतीं। गुरुजनोंकी बारंबारकी प्रेरणासे घर लौटतीं, पर मन तो नन्दनन्दनके पास ही रह जाता। अन्यमनस्क ही रहकर गृहकार्यमें लगतीं किन्तु ठीकसे कर नहीं पातीं। दूध दुहने बैठतीं तो आँखोंके सामने गायोंके थनकी जगह नन्दनन्दन दीखते; धानका छिलका उतारने बैठतीं तो ऊखलमें, मूसलमें, यहाँतक कि धानके कणोंमें श्यामसुन्दर दीखते; दही बिलोतीं तो दीखता मनमोहन नीलमणि मथानीको पकड़े खड़े हैं, घर लीपने बैठतीं तो हाथ चलता नहीं; क्योंकि उन्हें सर्वत्र व्रजेन्द्रनन्दन नाचते–थिरकते दीखते; उनके छोटे बालक रोने लगते, गोपियाँ लोरी देनेका विचार करतीं, पर आँखोंसे बच्चा नहीं दीखता, यशोदानन्दन दीखते; वस्त्र धोने बैठतीं तो जलमें, जलपात्रमें, वस्त्रके धागोंमें, मानो श्यामसुन्दर समाये हों––यह दीखने लगता और वे चकित–सी, मुग्ध–सी होकर बैठी रह जातीं; झाड़ू देने जातीं तो दीखता, मैं तो नन्दरायजीकी गोशालामें बैठी हूँ, गो–रजमें लिपटे नन्दनन्दन सामने खेल रहे हैं; बस फिर, झाड़ू हाथमें ही रह जाता। इस प्रकार वे अधिकांश समय भावाविष्ट रहतीं। लीलाशक्तिकी प्रेरणासे जब आवेश कुछ शिथिल होता, तो किसी प्रकार गृहकार्यका समाधान कर पातीं।

पर उस समय भी उनका मन तो रसराजशिरोमणि यशोदानन्दनके लीलारस–सुधा–सागरमें ही डूबा रहता तथा वाणी निरन्तर उन्हींका ललित लीलागान करती रहती; ऐसा प्रतीत होता कि मानो उनके अन्तर्हृदयका सरस रस–स्रोत ही सुरीले शब्द बनकर झर रहा हो—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेंखेंखनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्योधन्याव्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः।।

(श्रीमद्भा० १०। ४४। १५)

हरिलीला गावत गोपीजन अति आनँद भरि निसिदिन जाई।
बालचरित्र बिचित्र मनोहर कमलनैन ब्रजजन सुखदाई।।
दोहन मथन खँडन गृहलेपन मंडन सुत–पति–सेवा।
चारि जाम अवकास नहीं पल सुमिरत कृष्ण देवदेवा।।
भवन भवन प्रति दीप बिराजत कर कंकन पग नूपुर बाजे।
परमानंद घोष कौतूहल निरखि भाँति सुरपति जिय लाजे।।

आज वह व्रजसुन्दरी भी इसी तरह विशेषरूपसे भावाविष्ट होकर गा रही है। उसके मानस–नेत्रोंके सामने कभी गोवत्सपुच्छधारी श्यामसुन्दरकी, और कभी माताके साथ कमनीय कलहमें संलग्न यशोदानन्दनकी छबि आ रही है। गोपी भावनाके स्रोतमें डूब रही है और इधर उसके प्राणधन श्यामसुन्दर सचमुच ही वत्सपुच्छधारणकी लीलामें मत्त हैं—

खेलत मदनसुंदर अंग।
जुबति जन मन निरखि उपजत बिबिध भाँति अनंग।।
पकरि बछरा पूँछ ऐंचत अपनि दिसि बरजोर।
कबहुँ बच्छ लै भजत हरि कों जुवति जन की ओर।।
देखि परबस भए प्रीतम भयो मन आनंद।
मनहिं आकुल भई व्याकुल गई लाज अमंद।।
कोऊ देखत गहत कोऊ हँसत छाड़त गेह।
करत भायो अपने मन को प्रगट करि निज नेह।।
अति अलौकिक बाललीला क्योंहुँ जानि न जाय।
मुग्धता सों महारस सुख देत रसिक मिलाय।।

यह नियम है कि मिथ्या प्रापञ्चिक मानसिक कल्पनाएँ भी यदि प्राणशक्तिका पर्याप्त बल पा लें तो मूर्तिमती एवं सत्य बनकर प्रत्यक्ष दीखने लग

जाती हैं। फिर गोपीकी कल्पना तो सत्यके भी सत्य परमपरात्पर पुरुषोत्तम साक्षात् भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन परमानन्दघन श्रीकृष्णके सम्बन्धकी है ! तथा श्रीकृष्णमय बने हुए प्राणोंके बलपर श्रीकृष्णको गोपीकी ओर खींच लानेके लिये दौड़ रही है। अतः विलम्ब ही क्या था, श्यामसुन्दर मधुरातिमधुर आकर्षणसे युक्त उस भावनाके सूत्रमें बँधे हुए, खिंचे हुए–से ग्वालिनके घर आ पहुँचे। ग्वालिनने देखा—श्यामसुन्दर खड़े हैं, पर अकेले हैं। वास्तवमें श्यामसुन्दर अकेले ही आये थे; दादा दाऊ एवं साथियोंसे परामर्श करके सबको द्वारपर ही छोड़ दिया था, अकेले भीतर घुसे थे। अस्तु,

ग्वालिनके आनन्दका पार नहीं। उसने सोचा, स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ ? निर्णय करनके उद्देश्यसे उसने बाहरकी ओर झरोखोंसे झाँका, कुछ सखाओंके साथ दाऊ अतिशय शान्त मुद्रामें छिपे–से खड़े हैं; स्पष्ट था अपने अनुजके किसी संकेतकी प्रतीक्षामें खड़े हैं। ग्वालिन समझ गयी—स्वप्न नहीं, सत्य है; किसी मधुर गुप्त अभिसन्धिसे मेरे प्राणधन मेरे घर आये हैं। श्यामसुन्दरकी भोली चितवनकी ओर ग्वालिन देखने लगी। अधिक देरतक धैर्य न रख सकी, 'उसी क्षण' दौड़ पड़ी और गोद उठाकर हृदयसे लगा लिया—

बालदसा गौपाल की सब काहू को भावै।
जाके भवन में जात हैं सो लै गोद खिलावै।।
स्यामसुँदर मुख निरखि कै अबला सचु पावै।
लाल लाल कहि ग्वालिनी हँसि कठ लगावै।।

श्यामसुन्दरका स्पर्श–सुख पाकर ग्वालिनी मानो समाधिस्थ–सी हो गयी, सारी सुध–बुध खो बैठी। गोदमें बैठे हुए अन्तर्यामीने ग्वालिनके अन्तरमें झाँककर देखा। अन्तर्हृदयके तार झन–झन कर रहे हैं––

प्रर्णयकलितकलिकलने कृतिनौ।

राम–श्याम प्रणय–कलहमें बड़े ही चतुर हैं, बडे ही चतुर हैं। उस झनकारकी ओटमें एक लालसा छिपी है––कभी श्यामसुन्दर मुझे खिझाते, मैं रोष करती, ये झगड़ते; ऐसे प्रणय–कलहका सौभाग्य मुझे भी मिलता।

नीलमणि ग्वालिनका यही मनोरथ तो पूर्ण करने आये थे। वे चुपचाप गोदसे उठ खड़े हुए। ग्वालिन प्रस्तर मूर्तिकी तरह निश्चल बैठी थी। श्यामसुन्दर अपने सुकोमलतम करपल्लवोंसे धीरे–धीरे ताली बजाने लगे। ताली बजी कि गोपमण्डलीके सहित दाऊ भीतर आ गये। नीलमणिने

माखनगृहकी ओर संकेत कर दिया। वे सब चुपचाप बिना किसी शब्दके भीतर जा पहुँचे। इधर स्वयं नीलमणि गोशालाकी तरफ चल पड़े। गोशालामें बहुत–से बछड़े बँधे थे। गायें रँभा रही थीं। आज अभीतक दुही नहीं गयी थीं। दुहता कौन ? ग्वालिन तो आधी रातसे भावाविष्ट थी; तबसे दधि–भाण्डमें मथानी डालकर बिलो रही थी, दो–चार बार मथानी घुमाती, फिर ठहरकर गीत गाती, फिर कुछ देर मथती, फिर गाने लगती; उसे यह ज्ञान ही नहीं था कि कब प्रभात हुआ।

श्यामसुन्दरको देखकर बछड़े अपने सिर हिलाने लगे, गायें हाम्बाराव करने लगीं। श्यामसुन्दरने एक बार चञ्चल दृष्टिसे सब तरफ देखा कि कोई देख तो नहीं रहा है। फिर एक बछड़ेको खोल दिया। बछड़ा जाकर माँका दूध पीने लगा। उसके पश्चात् एक–एक करके वहाँ जितने बछड़े थे सबको उन्मुक्त कर दिया; सभी अपनी–अपनी माके थनोंसे हुमक–हुमक कर दूध पीने लगे। यशोदानन्दनके मनोहर मुखारविन्दपर एक अनिर्वचनीय उल्लास छा गया। अपने इस कौतुकको देखकर वे आनन्दमें भर गये और गाय तथा बछड़ोंकी दशा भी आज विचित्र ही है। गायोंने दूध पीते हुए बछड़ोंको चाटनेकी बात तो दूर, देखना तक छोड़ दिया। वे एकटक श्यामसुन्दरकी ओर देख रही हैं। बछड़े भी कुछ क्षण तो थनमें मुँह लगाकर दूध पीते, पर फिर पीना छोड़कर श्यामसुन्दरकी ओर देखने लग जाते। श्यामसुन्दर उन्हें पुचकारकर अपने नन्हें–नन्हें हाथोंको उठाकर शैशवोचित सरलतावश संकेत करते कि 'रे वत्सो ! पी लो, पी लो, ग्वालिनीके आनेके पहले–पहले ही सारा दूध आज पी डालो।' सचमुच आज श्रीकृष्णकी अचिन्त्यलीला महाशक्तिकी प्रेरणासे ही बछड़े दूध पीते रहे, अन्यथा सभी दूध पीना छोड़कर श्रीकृष्णको ही देखते रह जाते।

परमानन्दसुन्दर यशोदानन्दन एक गायके कुछ और निकट जाकर खड़े हो गये। गायने अपनी गर्दन बढ़ायी। यशोदानन्दन एक बार कुछ भयभीत–से हो गये, पर गायकी अतिशय शान्तमुद्रा देखकर उन्हें साहस हो आया। लगे गायकी गर्दनको सहलाने। गायने गर्दन फैला दी। यशोदानन्दनने देखा––गाय बड़ी सूधी है, मारेगी नहीं। यह सोचकर वे धीरेसे उसके थनके पास बठ गये। बछड़ा पहलेसे ही थन छोड़कर, अलग हटकर श्यामसुन्दरकी ओर देखने लगा था। श्यामसुन्दरने थनको दबाकर दूधकी ध

ार निकालनी चाही। धार निकली तथा उससे श्यामसुन्दरका बायाँ कंधा भींग गया। श्यामसुन्दरके आनन्दकी सीमा न थी। दूसरी बार दबाया। इस बार भी धार निकली। श्यामसुन्दरने चाहा था कि मुँहमें ही गिरे, पर धारने चिबुकका ही अभिषेक किया। तीसरी बारकी चेष्टामें यशोदानन्दन सफल हुए; दूधकी उज्ज्वल धार मुँहमें गिरी। दूधका घूँट पीकर हर्षोत्फुल्ल नेत्रोंसे नन्दनन्दनने मुँह पीछे फिराकर देखा तो दीखा—दाऊ एक स्तम्भकी ओटमें छिपे संकेत कर रहे हैं कि 'कन्हैया ! जल्दी भाग जा।' उनसे कुछ ही दूरपर ग्वालिन दिव्य प्रेमसागरमें डूबती–उतराती खड़ी–खड़ी यशोदानन्दनकी ओर देख रही है। उसकी आँखोंसे दर–दर प्रेमाश्रु बहकर उसके वक्षःस्थलको भिगो रहे हैं।

यशोदानन्दन उठकर भागे; पर ग्वालिनी पथ रोके खड़ी थी। बहुत चेष्टा करनेपर भी आखिर, श्यामसुन्दर ग्वालिनीके द्वारा पकड़ ही लिये गये। ग्वालिनीके अन्तर्हृदयमें तो आनन्दकी बाढ़ आ रही थी, पर बाहरसे वह गम्भीर होकर बोली—'अरे नटखट ! यह तुमने क्या किया, सारे बछड़ोंको खोलकर सारा दूध पिला दिया। और दाऊ !' कहकर ग्वालिनी लपकी तथा बड़ी तेजीसे उसने दाऊको भी पकड़ लिया। वे पास ही खड़े थे, अनुजके पकड़े जानेसे स्नेहपरवश होकर पास चले आये थे कि देखें ग्वालिनी क्या करती है—उन्हें कल्पना भी नहीं थी कि यह मुझे भी पकड़ लेगी। वे तो समझे हुए थे कि हमलोगोंके माखन खानेकी बात अभी ग्वालिनी जानती ही नहीं। जो हो, ग्वालिनी दोनों हाथ पकड़े हुए द्वारपर चली आयी और सब साथी भाग निकले।

अन्यान्य व्रजसुन्दरियाँ यह अनुपम दृश्य देखनेके लिये एकत्र हो गयीं। ग्वालिनी बायें हाथसे यशोदानन्दनको एवं दाहिनेसे दाऊको पकड़े खड़ी है। श्यामसुन्दर तरह–तरहकी बातें बना रहे हैं। पहले तो अपनेको निर्दोष सिद्ध करने लगे, फिर छोड़ देनेके लिये कातर प्रार्थना की। पर जब ग्वालिनने न छोड़ा तो उसीपर सारा दोष मढ़कर उससे झगड़ा करने लगे। कहने लगे—'इसीने तो मुझे बुलाया था; मैं जब आया तो मुझे गोदमें लेकर सो गयी; इसे सोयी देख मैं इसकी गोशालामें खेलने चला गया। बछड़े दूध पी गये तो मैं क्या करता।' ग्वालिनी छोटे–से यशोदानन्दनमें इतनी बुद्धि देखकर चकित रह गयी। अन्तर्हृदयका प्रेमसागर उमड़ पड़ा; ग्वालिनीके

सारे अंग शिथिल हो गये; हाथ ढीले पड़ने लगे, पर श्यामसुन्दर उसकी प्रेमभरी मुट्ठीसे बिना उसकी इच्छाके निकल नहीं सकते थे। ग्वालिनीने यशोदानन्दनके मुखारविन्दकी ओर देखा, उसपर प्रस्वेद–कण छा रहे हैं। प्रस्वेद–कणोंपर दृष्टि जाते ही ग्वालिनीने हाथ छोड़ दिया। श्यामसुन्दर एवं दाऊ भाग निकले। ग्वालिनी बावली–सी होकर भीतर चली गयी। लगातार छः पहर बीत गये, ग्वालिनी देख रही है––गायोंके थनसे दूधकी धार निकल रही है और यशोदानन्दन पी रहे हैं।

प्रतिदिनका अभ्यास है कि उषःकालसे कुछ पहले ही वे उठ पड़ती हैं; अपने कोटि–कोटि–प्राणोपम नयनमनोऽभिराम नित्यनवसुन्दर नीलमणिकी ललित लीलाएँ गाती हुई दही मथती हैं। अभ्यासवस ठीक उसी समय उसे बाह्यज्ञान हुआ; नयन–मन–चोर नीलमणिको देखनेके लिये उसके प्राण व्याकुल हो गये। पर अभी तो रात थी। प्रभातमें तीन घड़ीका विलम्ब था। तीन घड़ियाँ तीन कल्प–सी बीतीं। आखिर प्रभात हुआ। पर इस समय जानेपर नन्दरानी पूछेंगी, क्यों आयी है, तो क्या उत्तर दूँगी ? समाधान न पाकर ग्वालिनीके प्राण छटपटा उठे। उसकी व्याकुलतासे द्रवित होकर अन्तर्यामीने तुरंत उपाय बता दिया––'उलाहनेके बहाने चली जा।' फिर देर क्या थी; ग्वालिनी चल पड़ी।

विद्युत्–वेगसे नन्दरानीके घर जा पहुँची। नन्दरानीने पूछा––इतने सबरे कैसे आयी, बहन ? ग्वालिनी उत्तर देने जा रही थी कि यशोदानन्दन शय्यासे उठकर आँखें मलते हुए वहीं चले आये। आज यह पहला ही अवसर है कि यशोदानन्दन अपने–आप निद्रा त्यागकर शय्यासे उठकर बाहर आये हैं। ग्वालिनीकी दृष्टि श्यामसुन्दरके विधि–हर–मुनि–मोहन वदनारविन्दपर पड़ी। फिर क्या था––

भूली री उराहने को दैबौ।
परि गए दृष्टि स्यामघन सुंदर चकित भई चितैबो।।
चित्र लिखी–सी ठाढ़ी ग्वालिन को समुझै समुझैबो।
चत्रभुज प्रभु गिरिधर मुख निरखत कठिन भयो घर जैबो।।

कुछ देर निश्चल खड़ी रहकर विक्षिप्त–सी गाती हुई ग्वालिनी पीछेकी ओर लौट पड़ी। श्यामसुन्दरके मनोहर मुखारविन्दपर मधुर मन्द मुस्कान है और मैयाके मुखपर अत्यन्त आश्चर्य ! ग्वालिनी गाती जा रही है––

तव सूनुर्मुहुरनयं कुरुते।
अकुरुत किं वा व्यञ्जितमुरु ते।।
मुञ्चति वत्सान् भ्रामं भ्रामम्।
साचिव्यं वः कुरुते कामम्।।
असमयमोचनसुखनिधाम् ।
कः किं कुरुते न यदि निदानम्।।
विना निदानं कुरुते स्वामिनी।
क्रोशं न किमिव कुरुषे भामिनि !।।

(श्रीगोपालचम्पूः)

'अरे नन्दरानी ! तुम्हारा यह लाडला बार–बार अनीति करता है। इसने क्या किया है ? यह तुम्हें अच्छी तरह मालूम है। यह चलता–फिरता बछड़ोंको खोल देता है और मैं समझती हूँ कि तुमलोगोंकी सलाहसे ही सब कुछ करता है। यदि तुम्हारा संकेत न हो तो और असमयमें ही बछड़ोंको खोल देनेका अप्रिय कार्य कौन कर सकता है ? यदि कहो कि यह तुम्हारी सलाहसे ऐसा नहीं करता तो फिर तुम इसे डाँटती क्यों नहीं।'

(३)

दिन कुछ चढ़ चुका है। यशोदानन्दन व्रजवनिताओंके आँगनमें खेलते हुए घूम रहे हैं—

कण्ठे रुरोर्नखमनुत्तमहेमनद्धं श्रोणौ महार्हमणिकिंकिणिदास बिभ्रत।
मन्दं पुराद्वहिरुपेत्य करोति खेला माभीरनीरजदृशां भवनांगनेषु।।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

गलेमें उत्कृष्ट सोनेसे मँढ़ा हुआ व्याघ्रनख है, कटिदेशमें अतिशय मूल्यवान् मणियोंसे युक्त करधनी पहने हैं। चुपचाप धीरेसे अपने घरसे बाहर आकर यशोदानन्दन व्रजसुन्दरियोंके भवनोंमें जाकर उनके आँगनोंमें खेलते हैं।

खेलते–खेलते अपनी गोशालामें चले गये। वहाँ जाकर—

धेनु दुहत देखत हरि ग्वाल।
आपुन बैठि गए तिन के ढिग, सिखवौ मोहि कहत गोपाल।।
कालि देहौं गोदोहन सिखवै, आज दुहीं सब गाय।
भोर दुहौ जिन नंद दुहाई उन सौं कहत सुनाय सुनाय।।

बड़ो भयो अब दुहत रहौंगो आप आपनी धेनु निबेर।
सूरदास प्रभु कहत सीख दै मोहि लीजिए टेर।।

—अतिशय मनोयोगसे गायोंका दुहा जाना देखने लगे। व्रजनरेश नन्दराय पास ही दोहनीके दूधकी सँभाल कर रहे हैं। चञ्चल नन्दनन्दन पिताकी दृष्टि बचाकर गोशालामें दूर जा निकले। एक बूढ़ा ग्वाला मन्द–मन्द स्वरमें श्यामसुन्दरकी लीला गाता हुआ गाय दुह रहा है। श्यामसुन्दरको देखते ही गाय जोरसे रँभा उठी। ग्वालेने दृष्टि फिराकर देखा। देखते ही उसकी पलकें पड़नी बंद हो गयीं। गोपका रोम–रोम आनन्दसे नाच उठा। यह गोप व्रजनरेश नन्दरायजीको अतिशय प्रिय था; क्योंकि यह उनका बालसखा था। किसी दैवी प्रेरणासे इसने ब्याह नहीं किया था, आजीवन एकाकी नन्दरायजीके पास रहा। नन्दरायजी इसे मित्र ही नहीं, बड़े भाईके रूपमें देखते थे। श्यामसुन्दरके जन्म–दिनके समयसे यह गोप अर्द्धविक्षिप्त–सा रहता; अवश्य ही गायोंकी सेवा जैसे करता था, वैसे ही करता रहा। आज मानो उसके समस्त जीवनकी तपस्याका फल देनेके लिये नन्दनन्दन एकान्तमें उसके सामने चले आये।

नन्दनन्दन उसके पास बैठ गये। बायें हाथसे उसके दाहिने कंधेको तथा दाहिने हाथसे उसके चिबुकको स्पर्श करके बोले—'ताऊ, मुझे भी दुहना सिखा दो !' इस मधुर कण्ठध्वनिमें न जाने क्या जादू भरा है, वृद्ध गोप रो पड़ा। गोपके हाथसे दोहनी नीचे गिर पड़ी तथा नन्दनन्दनको छातीसे चिपटाकर वह बेसुध हो गया। बाह्यदृष्टिमें तो एक–दो क्षण ही बीते, पर वस्तुतः गोपकी दृष्टिमें अनन्त कल्पोंतक वह नन्दनन्दनको हृदयसे लगाये अनिर्वचनीय परमानन्दका रस लेता रहा। इधर नन्दनन्दन अपनी छोटी–छोटी अँगुलियोंसे उसकी आँखें पोंछ रहे हैं तथा कह रहे हैं—'क्यों ताऊ ! मुझे नहीं सिखा दोगे ?'

गोपकी भावसमाधि शिथिल हुई, पर आज तो सभी गायें दुही जा चुकी हैं। गोप बोला—'मेरे लाल ! कल सिखा दूँगा।' नन्दनन्दनका मुखारविन्द परमोल्लाससे जगमगा उठा। बोले—'ताऊ ! बाबाकी सौंह है, कल अवश्य सिखला देना, भला! मेरे आनेतक कम–से–कम एक गाय बिना दुहे हुए अवश्य रखना।' गोप एकटक अपने प्राणधनकी ओर देख रहा था। यशोदानन्दन फिर बोले—'ताऊ ! अब तो मैं सयाना हो गया, अपनी गायें अपने–आप दुह लूँगा।' गोप प्रस्तरमूर्तिकी तरह निश्चल था। नन्दनन्दन फिर बोले—'अच्छा

ताऊ ! आज संध्याको सिखा दो तो कैसा रहे ?' वृद्ध गोपने कुछ कहना चाहा, पर शब्द कण्ठसे बाहर नहीं निकले। व्रजराजनन्दन चटपट बोल उठे—'नहीं, ताऊ, सांयकाल तो मैया आने नहीं देगी; कल ही सिखा देना, कल तुम गोशाला दुहने जब आओ तो मुझे पुकार लेना।' यह कहकर यशोदानन्दन कुछ सोचने–से लगे। फिर बोले—'नहीं, पुकारनेकी आवश्यकता नहीं, मैं अपने–आप ही आ जाऊँगा; पर तुम भूलना मत, ताऊ !' वृद्ध गोपने कठिनतासे पुचकारका एक शब्द करके यह सूचित कर दिया कि 'मेरे लाल, ऐसा ही करूँगा।' नन्दनन्दन उल्लसित होकर बाबाके पास लौट गये।

दूसरे दिन जितना शीघ्र हो सकता था, यशोदानन्दन गोपके पास पहुँचे। उनकी आँखोंमें उत्कण्ठा भरी थी। आज दाऊ भी साथ हैं। श्यामसुन्दर कुछ परामर्श करके उन्हें साथ ले आये हैं। आते ही गोपकी दोहनी उन्होंने थाम ली तथा अतिशय उत्सुक होकर बोले—'चलो ताऊ, गाय कहाँ है ? सिखा दो।' अग्रज दाऊ भी प्रार्थनामिश्रित स्वरमें बोले—'हाँ–हाँ, ताऊ, इसे आज अवश्य सिखा दो।'

वृद्ध गोपने श्यामसुन्दरका मुख चूमकर उनके हाथोंमें एक छोटी–सी दोहनी दे दी। श्यामसुन्दर दुहनेकी मुद्रामें गायेके थनके पास जा बैठे। गोपने श्यामसुन्दरकी अँगुलियोंको अपनी अँगुलियोंमें पकड़कर थनको दबाना सिखाया। ठीक उसके कथनानुसार वे दबाने लगे। दूधकी धारा गिरने लगी, वह दोहनीपर न गिरकर कभी श्यामसुन्दरके पेटपर और कभी पृथ्वीपर गिरती। श्यामसुन्दर दोहनीको कभी धरतीपर रख देते, कभी घुटनोंमें दबा लेते। इस क्रियामें एक–दो धारें दोहनीमें, एक–दो श्यामसुन्दरके श्रीअंगपर और एक–दो धरतीपर गिरतीं। फिर भी कुछ दूध दोहनीमें एकत्र हो गया। हर्षोत्फुल्ल मुखसे दोहनी लेकर वे उठ खड़े हुए तथा नाच–नाचकर दाऊको दिखाया कि 'देखो, मैं दुहना सीख गया।' दाऊ एवं वृद्ध गोप दोनों ही यशोदानन्दनके हर्षोत्फुल्ल मुखको देख–देखकर मुग्ध हो गये। इस तरह गो–दोहनकी आधी शिक्षा समाप्त हुई।

तीसरे दिन प्रातःकाल उठते ही श्यामसुन्दर माताका आँचल पकड़कर प्रार्थना करने लगे—

दे मैया री दोहनी, दुहि लाऊँ गैया।
माखन खाय बल भयो, तोहि नंद दुहैया।।
सेंदुर काजरि धूमरी धौरि मेरी गैया।

दुहि लाऊँ तुरतहि तब, मोहि कर दे घैया।।
ग्वालन के सँग दुहत हौं, बूझौ बल भैया।
सूर निरखि जननी हँसी, तब लेत बलैया।।

नन्दरानी समझाने लगीं, पर श्यामसुन्दरने एक भी नहीं सुनी। किसी तरह मनुहार कर–करके माताने माखन खिलाया, श्रृंगार किया तथा गोदोहनकी बात भुला देनेकी चेष्टा की। माके अनुराग भरे हृदयमें यह भय था कि मेरा नीलमणि अभी निरा अबोध शिशु है, कहीं दुहते समय कोई गाय लात न मार दे। पर आज तो हठीले मोहन मचले हुए हैं। नन्दरानी अन्तमें गोदमें लेकर, कोटि–कोटि प्राणोंका प्यार देकर बोली––'मेरे प्राणधन नीलमणि ! पहले अच्छी तरह बाबाके पास जाकर दुहना सीख ले, तब मैं दोहनी दूँगी और तू दूध दुह लाना।' माकी बात सुनकर तत्क्षण नन्दनन्दन बाबाके पास दौड़ गये। उनकी धोती पकड़कर बार–बार हठ करने लगे––

बाबाजू ! मोहि दुहन सिखावो।
गाय एक सूधी–सी मिलवो, हौंहुँ दुहौं बलदाऊ दुहाओ।।

व्रजराज अपने हठीले लालकी मुखभंगिमा देखकर मुग्ध हो गये। गोदमें लेकर शुभ मुहूर्तमें सिखा देनेकी बात कहने लगे, पर व्रजदुलारे आज किसीकी बातपर माननेवाले न थे। पास ही उपनन्द खड़े थे। उनके परामर्शसे यह निश्चित हुआ कि नारायणका स्मरण करके नीलमणिकी साध पूरी कर दी जाय। फिर तो श्यामसुन्दरके उल्लासका कहना ही क्या। वे उसी क्षण बाबाकी गोदसे कूदकर मैयाकी गोदमें जा पहुँचे––

तनक कनक की दोहनी दे री मैया।
तात दुहन सिखवन कह्यौ मोहि धौरी गैया।।

श्यामसुन्दरके मनोहर मुखारविन्दपर प्रस्वेद–कण मोतीकी तरह चमक रहे थे। माने उन्हें अञ्चलसे पोंछकर अपने नीलमणिको हृदयसे लगाया, छोटी–सी सुवर्णकी दोहनी हाथमें दे दी और स्वयं साथ चल पड़ी। नन्दरानीके पीछे–पीछे यूथ–यूथ व्रजवनिताएँ नीलमणिकी गोदोहन लीला देखनेको एकत्र हो गयीं। इष्टदेव नारायणका स्मरण करके व्रजराजने अपने प्राणाधार पुत्रका सिर सूँघा तथा गोदोहन शिक्षाका अभिनय सम्पन्न हुआ। गोपनन्दन गौ दुहने बैठे––

हरि बिसमासन बैठि के मृदु कर थन लीनो।

धार अटपटी देखि कै ब्रजपति हँसि दीनो।।
गृह गृह ते आयीं देखन सब ब्रजनारी।
सकुचत सब मन हरि लियो हँसि घोषबिहारी।।

व्रजराजके आदेशसे उस दिन नन्दभवन सजाया गया। मंगलगान हुए, मंगलवाद्य बजे। व्रजराजने बाह्मणोंको मुक्तहस्त होकर दान दिया––

द्विज बुलाय दछिना दई, बिधि मंगल गावै।
परमानँद प्रभु साँवरो सुख–सिंधु बढ़ावै।।

आगे चलकर यशोदानन्दन गोदोहन–कलामें अत्यन्त कुशल हो गये। सबसे आश्चर्य यह था कि जो गायें कठिनतासे दुहने देती थीं, वे श्यामसुन्दरके हाथका स्पर्श पाते ही सर्वथा स्थिर खड़ी रहतीं और अपेक्षाकृत बहुत अधिक दूध देतीं। अतः अपने प्राणधन नीलमणिको गौ दुहनेके लिये व्रजवनिताएँ अपने–अपने घर ले जाने लगीं। अवश्य ही गोदोहन बहानामात्र ही था; इस मिससे वे अपने प्राणधनके दर्शनका परम सुख लेतीं। इस गोदोहनको निमित्त बनाकर चिदानन्दरस–घनविग्रह व्रजराजनन्दनने अनेकों मधुमयी लीलाओंका प्रकाश किया। वह छबि अद्भुत ही होती, व्रजांगनाएँ बछड़ोंके पास खड़ी रहकर निर्निमेष नयनोंसे दिव्य शोभा निहारतीं और लीलारसमत्त स्वयं भगवान् यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्र उनकी गायें दुहते। गोदोहनका पारिश्रमिक था श्यामसुन्दरपर बिक जाना––

जा दिन ते गैया दुहि दीनी।
ता दिन ते आप को आपुहि मानहुँ चितै ठगौरी लीनी।।
सहज स्याम कर धरी दोहनी, दूध लोभ मिस बिनती कीनी।
मृदु मुसकाय चितै कछु बोले, ग्वालिनि निरखि प्रेम रस भीनी।।
नितप्रति खिरक सवारें आवत, लोकलाज मनो धृत सो पीनी।
चत्रभुज प्रभु गिरिधर मनमोहन दरसन छल बल सुधि बुधि छीनी।।

चञ्चल यशोदानन्दनके बाललीला–रसका आस्वादन करते हुए सौभाग्यवती व्रजवासियोंके दिन क्षणके समान बीत रहे थे। अब उलूखल–बन्धनकी परम मनोहारिणी लीलाके पश्चात् उपनन्दके परामर्शसे समस्त नन्दव्रज वृन्दावनमें चला आया। अतः वृन्दावनके अनुरूप ही श्यामसुन्दर नन्दनन्दनके लीलारससिन्धुमें तरंगें उठने लगीं और उससे वृन्दावन प्लावित हो उठा।

श्यामसुन्दर अब वंशी बजाना सीख गये हैं। कब, कैसे, किससे सीखा—यह किसीने नहीं जाना; पर वंशीकी ध्वनिसे समस्त व्रजवासी मोहित हो उठे। श्यामसुन्दर अपनी मैयाकी, बाबाकी गोदमें बैठे रहते। व्रजांगनाएँ आतीं और कहतीं—

हे कृष्ण ! मातृकुचचूचुकचूषणेऽपि
नालं यदेतदधरोष्ठपुटं तवासीत्।
तेनाद्य ते कतिपयेषु दिनेष्वकस्मात्
कस्माद् गुरोरधिगतः कलवेणुपाठः।।
(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

'प्यारे कन्हैया ! तुम्हारे ये कोमल अधर तो मातृ–स्तनपानमें भी समर्थ न थे, फिर भला इने–गिने दिनोंमें ही तुमने इतनी मधुर वंशी बजानेकी शिक्षा किस गुरुसे सीख ली।' इस प्रकार व्रजांगनाओंका आग्रह देखकर श्यामसुन्दर वंशी बजाते और वे मुग्ध हो जातीं।

श्यामसुन्दर दिनभर दो कार्योंमें व्यस्त रहते—एक, वंशी बजाना, और दूसरा, सखाओंके साथ विविध क्रीड़ा करना। अब विशेषतः गाय एवं गोवत्सोंके साथ ही क्रीड़ा होती थी। कभी दो, चार, छः गोवत्सोंको अथवा गायोंको पकड़ लेते; उनको अपने अधीन करके नचाते तथा स्वयं उनके साथ नाचते। कभी उनके सींगोंको पकड़कर खेलते। कभी गाड़ीमें जुते हुए बैलोंके सींगको पकड़कर उनसे विविध क्रीड़ा करते। नन्दरानी, नन्दराय स्नेहवश भयभीत हो जाते। बार–बार मना करते, पर श्रीकृष्ण एक नहीं सुनते। साथमें दाऊका प्रोत्साहन था। दोनों भाई परामर्श करके बहुत दूर निकल जाते। जननी व्याकुल होकर ढूढ़ने जाती तो दोनों भाई व्रजकी सीमाके बाहर वनके पास बछड़ा चराते हुए गोपशिशुओंके साथ खेलते मिलते। अपने कोटि–कोटि–प्राणप्रतिम नीलमणिको कण्ठसे लगाकर जननी इतनी दूर अकेले आनेके लिये मना करतीं। नीलमणि कहते—

मैया री ! मैं गाय चरावन जैहौं।
तूँ कहि महरि नंदबाबा सों, बड़ो भयो न डरैहों।।
श्रीदामा लै आदि सखा सब, अरु हलधर सँग लैहौं।
दह्यौ भात काँवरि भरि लैहौं, भूख लगै तब खैहौं।।
बंसीबट की सीतल छैयाँ खेलत में सुख पैहौं।

परमानंददास सँग खेलौं जाय जमुनतट न्हैहौं।।

लालकी बात सुनकर जननीका हृदय आनन्दसे उछलने लगा। एक दिन था, नन्दरानी अपने प्राणधनको दुलराती हुई नाना मनोरथ करती थीं––कब मेरा नीलमणि बकैयाँ चलेगा, कग डगमग करते हुए धरतीपर पैर रखेगा, कब मुझे माँ–माँ कहकर पुकारेगा, कब माखन माँगेगा, कब गाय दुहने बैठेगा और वह दिन कब होगा, जब मैं माथेपर तिलक करके अपने नीलमणिको गाय चराने वन भेजूँगी। नन्दरानीके ये सभी मनोरथ पूर्ण हुए। गाय चरानेका मनोरथ भी मानो नीलमणिकी इस बातसे ही पूर्ण हो गया। पर अभी नीलमणिके तो दूधके भी दाँत नहीं उतरे हैं, यह भला वनमें गोचारण करने कैसे जायगा––इस भावनासे मैया अपने लालको तरह–तरहसे समझाने लगी कि 'मेरे लाल ! अभी कुछ दिन बाद गाय चराने भेजूँगी।' नन्दराय भी समझाते, पर चञ्चल श्यामसुन्दर भाग ही जाते। इसीलिये इस भयसे कि खेलते–खेलते पता नहीं किसी दिन किधर निकले, नन्द–दम्पति परस्पर परामर्श करके यह निश्चय किया––

यदि गोसंगावस्थानं विना न स्थातुं पारयतस्तर्हि
व्रजसदेशदेशे वत्सानेव तावत्सञ्चारयतामिति।

(श्रीगोपालचम्पूः)

'सचमुच ये राम–कृष्ण दोनों अब बड़े चञ्चल हो गये हैं तथा विशेषतः इन्हें गायोंका संग बड़ा प्रिय है। यदि गायोंके संग बिना ये नहीं रह सकते तो अच्छा यह है कि व्रजके निकट रहकर ये छोटे बछड़ोंको चराया करें।'

उपनन्दने भी यही सम्मति दी। अतः ज्यौतिषियोंको बुलाकर पुण्यतिथि—पुण्यमुहूर्त निश्चय कर लिया गया। व्रजमें बात फैलते क्या देर लगती ? सुनते ही सबने निश्चय किया कि हम भी अपने–अपने बच्चोंको उसी दिनसे वत्सचारणके लिये भेजेंगे।

मंगलमय प्रभात हुआ। आज यशोदानन्दन वत्सचारण प्रारम्भ करेंगे। नन्दरानीके आनन्दका क्या कहना ? माताने तरह–तरहके वस्त्राभूषणोंसे अपने हाथों लालको सजाया, पर स्नेहभरे हृदयमें ही आशंका उठी—इसका सौन्दर्य तो पहलेसे ही भुवन–मन–मोहन है। मैंने इसको सजाकर और भी सुन्दर बना

दिया। कहीं नजर न लग जाय ! जननीने उसी क्षण लालके भालपर काजलकी टेढ़ी रेखा खींच दी। इष्टदेव नारायणको मनाया। ब्राह्मणोंको स्वर्ण–दान किया और श्यामसुन्दरके लिये सबसे आर्शीवाद लिये। बड़ी सुखी है नन्दरानी आज। पर जब श्यामसुन्दर चलनेको तैयार हुए, तब तो वात्सल्य–स्नेहने जननीके मनमें शंकाओंके पहाड़ खड़े कर दिये। वे डर गयीं—कहीं जंगलमें मेरे कन्हैयाका अनिष्ट न हो जाय। इसे कोई वन्य कीट–पतंग न काट ले। कहीं यह गिर न पड़े। नन्दरानीकी आँखोंमें आँसू छलक आये। उन्होंने दाऊको समीप बुलाकर उनके हाथमें कन्हैयाका हाथ पकड़ाकर कहा—'बेटा ! तुम बड़े हो, यह कन्हैया बड़ा चञ्चल है; अपने इस छोटे भाईकी सँभाल रखना, भला !'

बत्स चरावन जात कन्हैया।
उबटि अंग अन्हवाय लाल कों फूली फिरत मगन मन मैया।।
निज कर करि सिंगार बिबिध बिधि, काजल–रेख भाल पर दीन्हीं।
दीठि लागिबे के डर जसुमति इष्टदेव सौं बिनती कीन्हीं।।
बिप्र बुलाय दान करि सुबरन सबकी सुखद असीसें लीन्हीं।
कर पकराइ नयन भरि अँसुअन सकल सँभार दाउए दीन्हीं।।

नन्दरायजी निर्निमेष नयनोंसे अपने पुत्रका श्रृंगार और यशोदाकी प्रेमदशा देख रहे हैं। हृदयका आनन्दरस पानी बनकर आँखोंकी राह बाहर आना चाहता है; पर मंगल मुहूर्त्तकी स्मृति बाँध लगा देती है। मन–ही–मन नन्दराय आजके पुण्यप्रभातको धन्यवाद दे रहे हैं। सब ओर आनन्द छाया है।

आजु ब्रज छायो अति आनंद।
बत्स चरावन जात प्रथम दिन नंदसुवन सुखकंद।।

माताके वात्सल्यपूर्ण हाथोंसे सजकर नीलमणि आँगनमें खड़े हुए। नन्दरायने अपने पुत्रके हाथमें एक छोटी–सी लाल छड़ी पकड़ा दी (**'तनुतरां लोहितयष्टिकामेकां करे धारयित्वा'**—श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)। सब बालगोपाल समीप आकर खड़े हो गये।

सोहत लाल लकुट कर राती।
सूथन कटि चोलना अरुन रँग पीतांबर की गाती।
ऐसेहि गोप सबै बनि आए, जो सब स्याम सँगाती।।

नन्दरायकी आज्ञासे आज गोवत्सोंको भी श्रृंगार किया गया है। वे तोरणद्वारके बाहर सुन्दर सजे हुए सिर उठाये खड़े हैं, मानो नन्दनन्दनकी

प्रतीक्षा कर रहे हों। सचमुच नन्दनन्दनके आते ही वे सभी आनन्दमें भरकर कूदने लगे। नन्दनन्दन दौड़कर उनके पास जा पहुँचे। उनके बीच खड़े होनेपर पुनः शान्त हो गये। तदनन्तर यशोदानन्दनने सब गुरुजनोंको प्रणाम किया और वत्सचारणके लिये प्रस्थान किया––

चले हरि बत्स चरावन आज।
मुदित जसोमति करत आरती साजे सब सुभ साज।
मंगलगान करत ब्रजबनिता, मोतिन पूरे थाल।
हँसत हँसावत बत्स–बाल सँग चले जात गोपाल।।

आज नन्दद्वारसे लेकर वनतक समस्त गोपोंके गृह सजाये गये हैं। सबके द्वारपर मंगलकलश हैं। घर–घर मंगलगीत गाये जा रहे हैं। अपने गृहके सामने आनेपर सभी व्रजांगनाएँ नन्दनन्दनकी आरती उतार रही हैं। आगे–आगे गोवत्स चल रहे हैं तथा उनके पीछे ग्वालसखाओंके बीचमें कंधेपर छींका रक्खे हुए नन्दनन्दन हैं। उन गोवत्सोंपर, ग्वालसखाओं एवं नन्दनन्दन व्रजांगनाएँ पुष्प बरसा रही हैं और उन सबको अपनी प्यार भरी चितवनसे निहाल करते हुए नन्दनन्दन वनकी ओर चले जा रहे हैं––

गोविंद चलत देखियत नीके।
मध्य गुपाल–मंडली मोहन काँधन धरि लिये छीके।।
बछरा–बृंद घेरि आगें दै ब्रजजन सृंग बजाए।
मानहुँ कमल–सरोवर तजि कै मधुप उनीदि आए।।

परस्पर हँसते–खेलते एवं गोवत्सोंको उछलते–कुदाते सबने वनमें प्रवेश किया। तृण–लताकुरोंसे अत्यन्त शोभित हरित वनभूमिपर बछड़ोंको चरानेके लिये छोड़ दिया। एवं परस्पर खेलमें संलग्न हो गये। कुछ देर सखाओंके साथ खेलकर फिर नन्दनन्दनने गोवत्सोंसे खेलनेका विचार किया। श्यामसुन्दर अपने सुकोमलतम हाथोंसे हरी–हरी दूब तोड़ते तथा बछड़ोंके मुँहमें जाकर देते। बछड़ा अपना मुख श्यामसुन्दरके हाथोंपर रख देता तथा धीरे–धीरे दूब चरने लग जाता। उसे चरते देखकर सभी गोवत्स श्यामसुन्दरको चारों ओर घेरकर खड़े हो जाते और उनके हाथसे दूब चरनेकी चेष्टा करते। श्यामसुन्दर भी अतिशय प्यारसे क्रमशः सबके मुँहमें हरी–हरी दूब देते। ग्वालसखाओंकी मण्डली श्यामसुन्दरके हाथोंमें तोड़–तोड़कर दूब देती और वे उन्हें खिलाते जाते। उस दिन दोपहरतकका

समय श्यामसुन्दरने सखाओंके साथ दूब तोड़–तोड़कर बछड़ोंको खिलानेमें ही बिताया। जब बछड़े तृणसे तृप्त हो गये तो उन्हें जलाशयके समीप ले जाकर पानी पिलाने लगे। एक बछड़ेने जल–पान नहीं किया। बाललीला–रसमत्त श्यामसुन्दरने सोचा––अच्छा, अपने हाथोंसे इसे जल पिला दूँ; सम्भवतः यह जलाशयमें जानेसे डरता है। यह सोचकर करकमलोंकी छोटी–सी अञ्जलि बनायी तथा जलाशयमें जल भरकर बछड़ेके मुँहके पास ले गये। छोटी–सी अञ्जलि मुँहतक पहुँचते–पहुँचते खाली हो गयी। श्यामसुन्दर कुछ उदास–से हो गये। दो–चार बार ऐसा करनेपर भी जब सफल नहीं हुए तो अपना पीताम्बर भिगोया। श्यामसुन्दर बछड़ेके सामने अञ्जलि बाँधे रहे एवं दाऊ ऊपरसे भीगे पीताम्बरको निचोड़ने लगे। जल अञ्जलिमें गिरने लगा, पर बछड़ा जलकी धारासे चिहुँककर अलग कूद गया। नन्दनन्दन एवं सभी सखा हँस पड़े।

जलसे तृप्त हुए बछड़ोंको एक वृक्षकी शीतल छायामें बैठाया। फिर उनसे खेलने लगे। एक बछड़ेके पास गये; उसके सारे अंगोंको सहलाया; उसके गलेमें अपनी दोनों भुजाएँ डाल दीं; पश्चात् गोवत्सके कपोलपर अपना कपोल रक्खा। फिर कानके पास मुँह लगाकर बोले––'क्यों रे वत्स ! मातासे मिलना चाहता है ? अच्छी बात है, मिला दूँगा।' इस तरह उससे बहुत देरतक बातें करते रहे; बछड़ा श्रीकृष्णके करस्पर्श, कपोलस्पर्शका योगीन्द्र–मुनीन्द्र–दुर्लभ आनन्द पाकर निहाल हो रहा है एवं उसे सुखी देखकर श्रीकृष्ण भी सुखसागरमें निमग्न हो रहे हैं––

*** * * मातरं मिलितुमिच्छसि ? मेलयिष्यामीति तत्कर्णे मिथः कपोलमेलनपूर्वकवृथावर्णनेन च तमुपचर्य्य सुखमुपलब्धवान्।** (आनन्दचम्पू)

ऐसे ही अनेक कौतुकोंसे बछड़े एवं गोपबालकोंको सुखी कर जननीके द्वारा भेजी हुई छाकका सबने मिलकर भोजन किया। भोजनके बाद विश्राम, विश्रामके बाद वंशीवादन एवं नृत्य आदि हुए। पर अब दिन अधिक ढल चुका था। अतः यशोदानन्दन बछड़ोंको एकत्र कर व्रज लौटे। जननी–जनक एकान्त मनसे वनकी ओर नेत्र लगाये प्रतीक्षा कर रहे थे। अपने हृदयधनको आते देखकर दोनों ही दौड़ पड़े। मार्गमें ही मिलन हुआ, यशोदाने अपने प्राणधनको हृदयसे लगा लिया; अपनी गोदमें नीलमणिको लिये घर पहुँची। बछड़ोंको नन्दरायजी स्वयं उनकी माताओंके पास पहुँचा

आये। वनके विविध दृश्योंका एवं अपने खेलोंका वर्णन राम–श्याम एवं सखा करने लगे। व्रजराज, व्रजरानी एवं व्रजांगनाएँ बड़े चावसे सुनने लगीं। यह प्रथम दिनका वत्सचारण हुआ।

(४)

अब दूसरे दिनसे राम–श्यामकी वत्स–चारण–लीला नियमितरूपसे प्रतिदिन ही होने लगी। पर जननीके आदेशसे वे दूर नहीं जाते थे––

अविदूरे व्रजभावः सह गोपालदारकैः।
चारयामासतुर्वत्सान् नानाक्रीडापरिच्छदौ।।

(श्रीमद्भा० १०। ११। ३८)

इसी वत्सचारणको निमित्त बनाकर भगवान् व्रजराजनन्दनने वत्सासुरका उद्धार किया; बछड़ोंको जल पिलाने जाकर बकासुरको अपने परमधाममें पहुँचाया; वत्सचारणमें ही संलग्न रहकर अघासुर–मोक्षलीला संपन्न की; तथा श्यामसुन्दरकी परम मनोहारिणी ब्रह्म–मोहन–लीला भी इसी वत्सचारणके प्रसंगसे ही हुई। इस भुवन–पावनी लीला–मन्दाकिनीसे जगत्‌को पवित्र करनेके उद्देश्यसे ही मानो सर्व लोकैकपाल व्रजराजनन्दन अपने अग्रज दाऊके साथ वत्सपालका वेष स्वीकार कर वत्सचारण करते हुए वृन्दावनमें घूमते हैं।

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोककैपालकौ।
सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः।।

(श्रीमद्भा० १०। ११। ४५)

व्रजराजनन्दन अब वत्सपाल गोपाल बन गये हैं। पौगण्डमण्डित श्रीअंगोंसे एक अभिनव सौन्दर्य झरता रहता है; अग्रज राम एवं सखाओंके साथ गायें चराते हुए वृन्दावनमें घूमते रहते हैं; वृन्दावनकी भूमि उनके चारु चरणतलोंका स्पर्श पाकर कृतार्थ हो रही है––

ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः।।

(श्रीमद्भा० १०। १५। १)

प्रतिदिन यशोदा एवं रोहिणी अपने वात्सल्यपूर्ण हृदयका समस्त प्यार लेकर राम–श्यामका श्रृंगार करतीं; नवनीत एवं विविध मिष्टान्नोंका कलेवा करातीं; कुछ छीकोंमें भर देती; तथा राम–श्याम गायोंको लेकर

वनमें चराने जाते। वनमें सखाओंके साथ विविध क्रीड़ा करते। कभी मदमत्त मधुकरोंका अनुकरण करते हुए गाते, कभी कलहंसोंका कमनीय कूजन सुनकर उसी तरहकी ध्वनि करते, कभी मयूरोंका मनोहर नृत्य देखकर उन्हींकी तरह नाचने लगते। इधर व्रजराजनन्दन तो इन विविध लीलाओंमें मस्त रहते, उधर गायें चरती हुई वनमें दूर चली जातीं। तब खेल छोड़कर श्यामसुन्दर अपने अग्रज एवं सखाओंको सूचना देते, कदम्बपर चढ़कर गायोंका नाम ले–लेकर पुकारते तथा पीताम्बर फहरा–फहराकर उन्हें अपनी ओर बुलाते—

टेरत ऊँची टेर गुपाल।
दूर जात गैया, भैया हो ! सब मिल घेरो ग्वाल।।
लै लै नाम धूमरी धौरी मुरली मधुर रसाल।
चढ़ि कदंब चहुँ दिसि तें हेरत अंबुज नयन बिसाल।।
सुनत सब्द सुरभी समुहानी उलट पिछोड़ी लाल।।

इस प्रकारकी अनेकों मनोहारिणी लीलाध्वनियोंसे श्रीगोवर्द्धनके समीपवर्ती वनप्रान्त, सरित, तड़ाग आदि सभी निनादित होते रहते। जिस समय मनमोहन श्यामसुन्दर अपनी बाँसुरीमें स्वर भरते, उस समय तो समस्त वृन्दावन ही एक अनिर्वचनीय रस–सुधा–धारासे प्लावित हो उठता, वनवासी चर–अचर प्राणी उसमें बह जाते।

दिनभर व्रजबालकोंको सुख देकर वनसे गोष्ठ लौटनेकी तैयारी होती। सभी ग्वाल अपनी–अपनी गायें इकट्ठी करते। श्यामसुन्दर भी दूर चरती हुई गायोंको बुलाते—

गोबिंद गिरि चढ़ि टेरत गाय।
गाँग बुलाई धूमरि धौरी, टेरत बेनु बजाय।।
स्रवन नाद सुनि मुख तृन धरि सब चितईं सीस उठाय।
प्रेम बिबस ह्वै हूँक मार चहुँ दिसि ते उलटीं धाय।।
चत्रभुज प्रभु पटपीत लिये कर आनँद उर न समाय।
पोंछत रेनु धेनु के मुख तें गिरि गोबर्द्धन राय।।

पिशंगि मणिकस्तनि प्रणतश्रृंगि पिंगेक्षणे
मृदंगमुखि धूमले शबलि हंसि वंशीप्रिये।
इति स्वसुरभीकुलं मुहुरुदीर्णहीहीध्वनि–

विर्दूरगतमाह्वयन् हरित हन्त चित्तं हरिः।।

(उज्ज्वलनीलमणि)

गायें एकत्र हो जाती तो उनसे अनेकों लाड़ लड़ाते। फिर सभी गोष्ठकी ओर गायें हाँककर चल पड़ते। उस समय श्यामसुन्दरकी शोभा देखते ही बनती। सुन्दर अलकावली गोधूलि–कणोंसे मण्डित रहती, उनमें मयूरपिच्छ एवं वनप्रसून बँधे रहते, चितवनमें असीम सौन्दर्य भरा होता, अधरोंपर मुधर मुसकान खेलती रहती, स्वयं बाँसुरी बजाते होते एवं सखा–मण्डली उनकी गुणावली गाती रहती। गायोंकी पंक्तियोंसे श्यामसुन्दर घिरे रहते।

यूथ–की–यूथ व्रजांगनाएँ अपने कोटि–कोटि–प्राणप्रतिम प्रियतमको देखनेके लिये एकत्र हो जातीं। उनकी आकुल दृष्टि गायोंके बीचसे उड़कर श्यामसुन्दरके पास जा पहुँचती। अश्रु–जल–पूरित नयनोंसे कोई व्रजांगना जब नहीं देख पाती, तब दूसरी संकेत करती।

वे देखो आवत हैं गिरिधारी।
कछुक गाय आगें अरु पाछें, सोभित संग सखा री।।

श्यामसुन्दरको देखकर समस्त दिनका उनके विरहानलमें जलता हुआ व्रजांगनाओंका संतप्त हृदय शीतल हो जाता।

यह लीलाक्रम प्रतिदिन चलता, पर प्रतिदिन ही एक नये रंगमें ढल जाता। उसीके साथ भूभार–हरणका कार्य भी आनुषंगिकरूपसे होता जाता। पहले कालिय–उद्धार हुआ। विषदूषित जल–पानसे मृत गौओं एवं ग्वाल–सखाओंको अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर व्रजराजनन्दनने जीवन–दान दिया। फिर कालिय–दमनके उद्देश्यसे स्वयं कालियह्रदमें कूद पड़े। लीला–रस–मत्त व्रजराज–नन्दनको न पहचानकर कालियने उन्हें अपने फणोंमें बाँध लिया। अपने प्राणधनकी यह आकस्मिक दशा देखकर सखा एवं गायें रो पड़ीं। इतना ही नहीं, समस्त व्रजमण्डल एकत्र होकर कालियह्रदमें कूदकर प्राण देनेको प्रस्तुत हो गया। श्रीकृष्णकी अनन्त कृपाशक्तिके लिये यह असह्य था। दृश्य बदला, और दूसरे ही क्षण कालियके फणको व्रजराजनन्दनने चूर–चूर कर डाला। नागपत्नियोंके अनुनय–विनयसे नागने जीवन–दान पाया तथा आज्ञा हुई––'नाग ! यहाँसे चलो जाओ; यह नदी हमारी गायोंकी, हमारे जनोंकी क्रीडास्थली होगी।'

अग्रज बलरामके द्वारा धेनकासुर एवं प्रलम्बासुरका उद्धार हुआ।

दो बार कंसप्रेरित आसुरी माया श्यामसुन्दर एवं उनके प्रिय व्रजको भस्म करनेके उद्देश्यसे दावानलके रूपमें प्रकट हुई। स्वयं भगवान् श्यामसुन्दर उसी बालोचित लीला–रसका आस्वाद लेते–लेते उस लप–लप करती दावाग्निको पी गये। ऐसे अद्भुत कृत्योंके समय व्रजराजनन्दनके श्रीअंगोंमें तदनुरूप कार्यके लिये किसी विशाल विकराल रूपका आविर्भाव होता रहा हो, ऐसी बात बिल्कुल नहीं थी। उनका तो सर्वदा वही मधुर मनोहर नव–जलधर–श्यामल अंग, अरुण अधर, कर–पल्लवोंमें वही हरिद्वेणु—सब कुछ ज्यों–का–त्यों बना रहता। ऐसी लीलाओंका समापन करके भी सन्ध्या–समय वे गायोंको बटोरकर, अपने वदनारविन्दपर उसी स्वभावसुलभ प्रसन्नता, उसी आनन्दमयी शान्तिको लिये, वेणुछिद्रोंसे मधुधाराकी वर्षा करते हुए व्रजमें लौटते—

गाः संनिवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः।
वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः।।

(श्रीमद्भा० १०। १६। १५)

इस तरह गो–चारण–लीलाका आनन्द लेते हुए व्रजराजनन्दनको अब दो वर्ष, दस महीनोंसे कुछ अधिक हो गये। पञ्चम वर्षकी कार्तिक शुक्ला अष्टमीको यह गो–चारण–लीला आरम्भ हुई थी। अब इस बार उनके अष्टम वर्षकी शरदऋतु आयी। सप्तम वर्षके प्रारम्भमें ही गो–चारण–परायण व्रजराजनन्दन श्रीकृष्णके पौगण्डवयःश्रित श्यामल अंगोंके अन्तरालसे कैशोर मानो झाँक–सा रहा था तथा उन्हें देख–देखकर व्रज–युवतियोंके हृदयमें अनुरागका अंकुर उत्पन्न होने लगा था। इस अष्टम शरद्ने तो मानों स्पष्ट आह्वान किया एवं आमन्त्रण पाकर व्रजराजनन्दनके नव–नीरद श्रीअंगोंपर कैशोरने अपनी अनादिसिद्ध सत्ताकी घोषणा करना प्रारम्भ कर दिया—

वयसो विविधत्वेऽपि सर्वभक्तिसाश्रयः।
धर्मः कैशोर एवात्र नित्यनानाविलासवान्।।

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

स्वयं भगवान् व्रजराजनन्दनकी अचिन्त्य लीलामहाशक्ति भी आगेकी लीला प्रकाशन करनेको उद्यत थी; वयस्क व्रजदेवियोंको वात्सल्यरसकी आनन्दधारामें डुबोकर अब उसे माधुर्य–रसकी मन्दाकिनीसे व्रज–सुन्दरियोंको आप्लावित करना था। अतः लीलाशक्तिने भी व्रजराजनन्दनके श्रीअंगोंपर

उभरते हुए कैशोरका स्वागत ही किया। इसीलिये आज जब शारदीय श्रृंगारसे सजे हुए वृन्दावनमें गोचारण–लीला–रसमें निमग्न श्यामसुन्दर व्रजराजनन्दनकी वंशी बजी––

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृंगद्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम्।
मधुपतिरगाह्य चारयन् गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम्।।
(श्रीमद्भा० १०। २१। २)

'उस वनके सरोवर, नदियाँ और पर्वत––सब–के–सब सुन्दर–सुन्दर पुष्पोंसे परिपूर्ण हरी–हरी वृक्षपंक्तियोंसे शोभायमान हो रहे थे। मतवाले भौंरे स्थान–स्थानपर गुनगुना रहे थे और तरह–तरहके पक्षी झुंड–के–झुंड अलग–अलग कलरव कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजी और ग्वालबालोंके साथ उसके भीतर घुसकर गौओंको चराते हुए अपनी बाँसुरीपर बड़ी ही मधुर तान छेड़ी।'

तब व्रजयुवतियाँ क्षणभरमें ही कुछ–से–कुछ हो गयीं। उनके हृदयका अनुराग–सिन्धु उमड़ पड़ा तथा उसकी उत्ताल तरंगोंमें उनके शरीर, इन्द्रियाँ, मन, प्राण––सभी बह चले। एक ही नहीं, सबकी यही दशा थी। सभी एक ही धारामें डूबती–उतराती अपने प्रियतम श्यामसुन्दर व्रजराजनन्दनकी ओर बहती जा रही थी। लीलाशक्तिकी प्रेरणासे एक गोपीका स्थूलशरीर दूसरीके स्थूलशरीरसे जा सटा, दूसरीका तीसरीके शरीरसे, तीसरीका चौथीसे; इस तरह रस–धारामें बहती हुई व्रजसुन्दरियोंकी एक गोष्ठी बन गयी। सामने स्वजनों एवं आर्यपथका विशाल पर्वत खड़ा था। प्रेम–रस–पीयूषकी प्रबल धाराके प्रचण्ड वेगसे उसकी भी जड़ हिल गयी। पर एक बार तो उसने उनके शरीरको रोक ही लिया। उनके शरीर उस पर्वतको अभी पार न कर सके। अवश्य ही यह प्रतिरोध भी पर्वतके टूटनेके लिये हुआ था। जो हो, उनका शरीर ही रुक सका; उनकी रसमय मन–प्राण–इन्द्रियाँ तो विरह–तापसे वाष्प बन उड़कर कभीकी श्यामसुन्दरके पास पहुँच गयीं और श्यामसुन्दरका मधुर स्पर्श पाकर निहाल होने लगीं। उनके शरीर व्रजमें थे। शेष सब कुछ था अपने जीवनधन श्यामसुन्दरके पास। लीलाशक्तिकी इच्छासे ही उनके स्थूलशरीर एवं व्रजराजनन्दनमें रमे हुए मन–प्राण आदिमें सूक्ष्म तन्तु(silver chord)का–सा सम्बन्ध अवशिष्ट था। इसीके सहारे मानो उनके मन–इन्द्रिय–प्राणोंकी अनुभूति इस स्थूलशरीरमें प्रतिध्वनित होने लगी।

एक व्रजयुवतीके मुखसे यह प्रतिध्वनि सुन पड़ी—'सखियों ! नेत्रोंका बस चरम फल यही है कि वनमें गायोंको ले जाते हुए श्यामसुन्दर व्रजराजनन्दन एवं गौरसुन्दर बलरामके मुखारविन्दका मधुपान कर लें।'

कोई प्रतिध्वनि ऐसी थी—'देख सखि ! वनमें गाय चराने आकर राम–श्याम कैसी क्रीड़ा कर रहे हैं। आम्र पल्लव, मयूर–पिच्छ, पुष्प–गच्छ एवं कमलोंकी मालासे श्रृंगार किये हुए दोनों कितना सुन्दर गा रहे हैं।' कुछ गोपियोंके मुखसे सुन पड़ा रहा था—'बहिनो ! देखो, गायोंको बुलानेके लिये हमारे हृदयधन वंशी बजा रहे हैं। ओह ! पता नहीं इस वंशीने कौन–सी कठोर तपस्या की है, जिसके फलस्वरूप यह निरंकुश होकर हमारे गोविन्दकी अधर–सुधाका पान कर रही है; यह अधर–सुधा तो हमलोगोंकी ही वस्तु थी।'

वीणाकी झनकारकी तरह कुछ प्रतिध्वनियाँ थीं—'सखियों ! वहाँ देखो, गायोंको चराते हुए व्रजराजनन्दन आगे बढ़ रहे हैं; उनके चरणोंके स्पर्शसे वृन्दावनकी भूमि निहाल हो रही है। पृथ्वीदेवीने वृन्दावनको अनन्त कालसे अपने हृदयपर धारण कर रक्खा है। आज वृन्दावनने भी उसका पूरा प्रतिदान दे दिया।

कुछके मुखोंमें ये प्रतिशब्द थे—'हरिनियो ! तुमलोग धन्य हो। अयाचित अनन्त असीम आनन्द तुम्हें प्राप्त हो गया। श्यामसुन्दर तो वनमें गाय चराने आये थे; पर इसी निमित्तसे तुमलोग अपने पतियोंके साथ रसभरी चितवनके पुष्पोंसे उनकी पूजा करके निहाल हो गयीं। हम अभागिनी इतने निकटसे प्रियतमको कहाँ देख पाती है !'

कुछ गोपियोंके कण्ठसे असीम सुन्दर ! स्वर्गीय संगीतको भी तुच्छ कर देनेवाली स्वर–लहरी ध्वनित हो रही थी—'बहिन ! इन गायोंको धन्य है। देखो, प्यारे श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी अधर–सुधा वंशीके छिद्रोंसे शब्द बनकर झर रही हैं, और ये घास चरना भूलकर अपने कर्ण–पुटोंसे उस पीयूषका पान कर रही हैं। आह ! इन बछड़ोंकी दशा तो देखो, मातृस्तनोंका दूध मुखमें ज्यों–का–त्यों लिये ये निस्तब्ध खड़े हैं। दूधको कण्ठके नीचे उतारना भूल गये हैं। क्यों न हो ! इन गायोंकी, बछड़ोंकी आँखोंकी राह प्रियतम श्यामसुन्दर इनके हृदयमें जो जा पहुँचे हैं, उनके आलिंगनका सुख इन्हें प्राप्त हो रहा है। देखो, बहिन ! इनकी आँखोंमें आँसू छल–छल कर रहे हैं।

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः।
शावाः स्नुतस्तनपयःकवला स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः।।
(श्रीमद्भा० १०। २१। १३)

(६)

आम्रकी सुशीतल छायामें स्फटिकनिर्मित वेदीपर पूर्वाभिमुख बैठे श्यामसुन्दर कुछ सोच रहे हैं। घुँघराली कुन्तलराशि कंधोंपर झूल रही है। कुछ क्षण वंशीके क्षिद्रोंका अंगुलियोंसे मृदु–मृदु स्पर्श करते हुए एक अभिनव–रागिनीका संचार कर रहे थे, जिसके मधुर संस्पर्शसे आम्रशाखा, आम्रपल्लवोंसे मधु झरने लगा था। पक्षी अपने कलरवको रोककर नीरव हो गये थे। आँखें बन्द किये वंशीनादका पीयूष पानकर रहे थे। पर हठात् व्रजराजनन्दन रुक–से गये थे, अन्यमनस्क–से होकर कुछ विचारने लगे। मानो अपने निराविल प्रेमानन्दके दानमें आत्मविस्मृत हुए व्रजराजनन्दनके सामने उनकी अचिन्त्य लीलामहाशक्तिने भावी कार्यक्रमका चित्रपट ला रक्खा––

'देव ! उधर भी दृष्टि हो, कल होनेवाले इन्द्रबागकी तैयारी प्रारम्भ होने जा रही है। अब इन्द्रका गर्वहरण आवश्यक है। उनपर कृपा करनी ही है।' इसी विचारमें श्यामसुन्दर संलग्न हो गये। इधर सचमुच उसी समय नन्दरायकी आज्ञासे नगारे बज उठे तथा सबको इन्द्रयागके प्रबन्धके लिये आदेश सुना दिया गया।

श्यामसुन्दर उठ खड़े हुए। उनके अरुणिम अधरोंपर मन्द–मन्द मुसकान थी। एक बार गिरिराजकी ओर अपनी दृष्टि डालकर वे गोशालाकी ओर चल पड़े। नन्दरानी अपने लालको ढूँढ़ती फिर रही थीं, गोशालाकी ओर जाते हुए व्रजराजनन्दनको देखकर वात्सल्यभरे स्वरमें पुकारने लगीं––'मेरे नीलमणि ! ओ नीलमणि !'

नीलमणि रुक गये। माँने आकर उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया, फिर मुखचुम्बन किया और सिर सूँघने लगीं। कुछ क्षणों बाद गद्गद कण्ठसे बोलीं––'नीलमणि ! बेटा ! आज दीपावली है, मैं दीपोंको थालमें सजाने जा रही हूँ; तू बाबासे आज्ञा लेकर दीप जला दे।'

कहत यशोदा सुनि मनमोहन अपने तात कि अग्या लेहु।
बारौ दीपक बहुत लाड़िले करि उजियारो अपनो गेहु।।

पर नीलमणिके तो प्राण मानो गायोंमें बस रहे थे। नीलमणिने माके आँचलसे अपना मुख पोंछते हुए कहा––

हँस ब्रजनाथ कहत माता सों धौरी धेनु सिंगारौ जाय।
परमानंददासकौ ठाकुर जेहि भावत हैं निसिदिन गाय।।

आनन्दमें निमग्न मा तो दीप सजाने घरकी ओर, और प्रेमवितरणमें प्रमत्त व्रजराजनन्दन गाओंको सजाने खिरककी ओर चल पड़े। गायोंका श्रृंगार हुआ——

स्याम खरिक के द्वार करावत गायन कौ सिंगार।
नाना भाँति सींग मंडित किए ग्रीवा मैले हार।।
घंटा कंठ मोतिन की पटियाँ पीठिन को आछे औछार।
किंकिनि नूपुर चरन बिराजत बाजत बाजत चलत सुढार।।

सूर्य अस्ताचलकी ओर जा रहे थे। संध्याकालीन अरुण रश्मियोंसे गायोंके आभूषण चम–चम करने लगे; ब्रजेन्द्रनन्दन बालोचित प्रसन्नतासे भरते जा रहे थे। धौरी, धूमरी, कजरी, पीरी आदिकी शोभा ही मानो इस समय उनके हृदयकी सबसे प्यारी चीज थी। नन्दरानी कुछ देर दीपक सजातीं, तथा फिर दासीको सौंपकर अपने नीलमणिका गोश्रृंगार देखने खिरककी ओर आ जाती; फिर दीपक सजाने जातीं, फिर लौट आतीं। अन्य व्रजांगनाएँ अपने–अपने प्रासादके गवाक्षरन्ध्रोंसे नन्दनन्दनकी यह लीला देख रही हैं। उनके घरमें दीपावलीका उत्सव है, दीप सजाना परमावश्यक है; पर दीपककी थाली उनके हाथोंमें ही पड़ी रह गयी, प्रस्तरप्रतिमा–सी निश्चल खड़ी रहकर वे श्यामसुन्दरको देखती ही रह गयीं। कब सध्या हुई, यह भी कितनोंने नहीं जाना; उनके नेत्रोंके सामने तो श्यामसुन्दर गायोंका श्रृंगार ही कर रहे थे। अभी भी उजेला ही था। अस्तु,

संध्या होते ही दीपोंकी पंक्तियोंसे सारा व्रज जगमग हो उठा। व्रजांगनाओंने सुन्दर श्रृंगार किया, वे स्वर्ण–थालोंमें दीपक सजाकर नन्द गृहमें आयीं। व्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण रससारस्वरूपा वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी भी सखियोंके साथ पधारीं——

गोपीजन जूथ सँग जोरी कुँअर किशोरि, साज सिंगार उर उदित प्रेमावली।
कर कनक थाल भर दीप संजोय सब चलीं गृहनंदके द्वार संझावली।।

नन्दरानीने वृषभानुनन्दिनीको हृदयसे लगा लिया। कपोलोंका चुम्बन करती हुई नन्दरानीने कहा——लाडिली ! विधाताने तुझको एवं मेरे नीलमणिको समान कौशलसे रचा है; तुझे देखते ही मुझे नीलमणिकी स्मृति हो आती है। सच, बेटी ! तेरा एवं नीलमणिका मुख सर्वथा एक जैसा है, तू तो मेरी ही

लाडिली है; नीलमणिकी तरह तुझे देखते ही मेरा हृदय शीतल हो जाता है।

न सुतासि कीर्तिदायाः किन्तु ममैवेति तथ्यमाख्यामि।
प्राणिमि वीक्ष्य मुखं ते कृष्णस्येवेति किं त्रपसे।।

(उज्ज्वलनीलमणि)

आज वृषभानुनन्दिनीके स्पर्शसे देखते–देखते मैया यशोदाकी एक विचित्र दशा हो गयी। उन्हें दीखता था, मानो लाडिलीके अणु–अणुमें मेरा नीलमणि भरा है, उन्हें अनुभूति हो रही थी कि नीलमणिको ही बाहुपाशमें लेकर बैठी हूँ। मैयाकी आँखोंमें अश्रुधारा बह चली, और उससे लाडिलीका सिर भीगने लगा। अभिनन्दपत्नीकी चेष्टासे कहीं जाकर मैयाको बाह्यज्ञान हुआ; मैया निर्णय कर सकीं कि यह कीर्तिदा रानीकी लाडिली राधा है, नीलमणि तो गोशालाकी ओर गया है।

मैयाने बहुत–से मेवे मँगवाये; लाडिलीका आँचल भरने लगीं। आँचल भर जानेपर बहुत–से मिष्टान्न मँगवाये; पासमें ही श्रीकृष्णका पीताम्बर पड़ा था। नीलमणिके लिये प्रतिदिन मैया नूतन पीताम्बर निकालती थीं, कभी–कभी एक ही दिनमें दो–तीन बार पीताम्बर बदला जाता था। नीलमणि दो घड़ी ओढ़कर फेंक देते थे। मैया नया निकालकर पुनः कंधोंपर डालती थी। आज कुछ ही देर पहले पीताम्बर कंधोंपरसे फेंककर नीलमणि भागे थे, मैयाने नया पीताम्बर दासीके हाथ ओढ़ाने भेजा था। वही पहला पीताम्बर वहाँ पड़ा था; मैयाने उसीमें विविध मिष्ठान्न बाँधकर लाडिलीकी अञ्जुलिमें रख दिया। फिर एक मणिजटित मुद्रिका मँगाकर कहा—'लाडिली ! मैंने अपने नीलमणिके लिये यह मुद्रिका बनवायी थी, आज मैंने उसे पहनाया था; पर सम्भवतः कुछ बड़ी बन गयी हैं, उसने कुछ ही देर बाद निकालकर फेंक दिया। तेरी अँगुली तो देखूँ बेटी ?' यह कहकर लाडिलीकी अनामिकामें मैयाने मुद्रिका डाल दी। मुद्रिका ठीक आ गयी, मानो लाडिलीके नापकी ही बनी हो। मैयाके आनन्दका पार नहीं; पर लाडिलीके सारे अंगोंमें कम्पन हो रहा है, प्रस्वेद–कण ललाट एवं कपोलोंपर झल–झल कर रहे हैं।

यशोदा मैया लाडिलीके दाहिने कंधेपर हाथ रक्खे, नीलमणिको ढूँढ़ने चलीं। नीलमणि खिरकके द्वारपर प्रज्वलित दीपोंकी पंक्ति सजा रहे

थे। गायें एवं बछड़े हुमड़–हुमड़कर द्वारके पास आ रहे थे; ग्वाले बहुत चेष्टा करते, पर वे गायें एक नहीं सुन रहीं हैं। वे तो अपने प्राणधन श्यामसुन्दरका दीपदान देखने आयी हैं और उनका आवाहन पाकर आयी हैं; भला, किसीके रोकनेसे वे कैसे रुकतीं। अतः द्वारके पास गायोंकी अपार भीड़ एकत्र हो गयी। आश्चर्य यह था कि भीतर इतनी उछल–कूद करनेपर भी द्वारके पास आयीं तो वे शान्त हो गयीं; दीप–पंक्तियोंको किसी गाय या बछड़ेने नष्ट नहीं किया।

मैयाने पुकारा––नीलमणि ! और नीलमणिने भी सिर घुमाकर देखा। नीलमणिके मुखारविन्दसे अनन्त असीम सौन्दर्य स्रोत झर रहा है। मैयाने एक बार नीलमणिकी ओर देखा, फिर लाडिलीकी ओर; फिर आँखें मूँद लीं। नीलमणिके नेत्र भी अपने–आप बंद हो गये; लाडिलीकी आँखें भी न जाने कब बंद हो गयी थीं। मैयाके पीछे–पीछे यूथ–की–यूथ व्रजांगनाएँ दौड़ी आयी हैं, सभी अपलक नेत्रोंसे यह सुन्दर दृश्य देख रही हैं। पर गायें जोर–जोरसे हम्बारव करने लगीं।

कुछ क्षण बाद मैया, लाडिली एवं व्रजांगनाओंको व्रजराजनन्दनने घूम–घूमकर गायोंका श्रृंगार दिखाया। व्रजांगनाएँ मन–ही–मन गायोंके भाग्यकी सराहना कर रही हैं। गायोंका श्रृंगार देखने कुछ देरके लिये स्वयं नन्दरायजी भी आये। पर नीलमणिकी मंगलकामनासे ही आज वे इन्द्रयागकी व्यवस्थामें संलग्न हैं; इसलिये कुछ क्षण ही ठहरकर, नीलमणिको हृदयसे लगाकर, सिर सूँघकर लौट गये। व्रजराजनन्दन श्यामसुन्दर अपने पिताको लौटते देखकर कुछ सोचते हुए–से मुसकराने लगे।

अतिशय उमंगसे व्रजगोपोंने दीपावलीका उत्सव मनाया। आज समस्त व्रजमें जागरण है, सर्वत्र बाजे बज रहे हैं। पर व्रजरानी अपने नीलमणिको दुग्धधौत उज्ज्वल सुकोमलतम शय्यापर लिटाकर सुलानेकी चेष्टा कर रही हैं। नीलमणि आज ७ वर्ष २ महीने ७ दिनके थे, पर वात्सल्यरससाररूपा व्रजरानीके लिये दुधमुँहे शिशु–जैसे ही थे। प्रतिदिनकी तरह मैया आज भी कहानी सुनाकर, गीत गाकर, थपकी देकर सुलानेका प्रयास कर रही हैं; पर श्यामसुन्दरकी आँखोंमें आज नींद नहीं। रात्रि डेढ़ पहरसे अधिक बीत चुकी है। नन्दभवनके तोरणद्वारके पास वन्दिजन गा रहे हैं—

जयति व्रजपुर सकल खोरि गोकुल अखिल

तरनितनया निकट दिब्य दीपावली।
जयति नवकुंजबर द्रुम लता पत्र प्रति
मानो फूलीं नवल कनक चंपावली।।
जयति गोबिंद गोबृंद चित्रिच करे,
मुदित उमड़ी फिरै ग्वाल–गोपावली।
जयति ब्रज ईस के चरित लख थकित सिव,
मोहे बिधि, लज्जित सुरलोक–भूपावली।।

जब रात्रि एक पहर अवशिष्ट रही, तब कहीं व्रजराजनन्दन सोये। फिर भी बीच–बीचमें चौंक–से पड़ते थे, मानो कुछ स्वप्न देख रहे हों। नन्दरानी चिन्तित थीं, कहीं मेरे नीलमणिको किसीकी नजर तो नहीं लग गयी। मैया दृष्टिदोषनिवारणके उद्देश्यसे धौरी गायको लानेके लिये कहने गयीं। व्रजराजनन्दन स्वप्नावेशमें बोल रहे थे—'लाडिली ! मेरी धौरीका शृंगार देखो।' उसी समय धौरी शयनागारमें पहुँची। माताने धौरीकी पूँछका अपने नीलमणिके अंगोंसे स्पर्श कराया, फिर उसे अपने लालके चारों ओर तीन बार घुमाया। धौरी प्रेममें विह्वल–सी हुई स्तब्ध–शान्त खड़ी रहकर यशोदाके नीलमणिकी शोभा निहार रही है और श्यामसुन्दर स्वप्नमें ही कह रहे हैं—'अहा ! आज मेरी धौरी कितनी सुन्दर दीखती है।'

(७)

कार्तिक शुक्ला प्रतिप्रदाका प्रभात है। स्वयं भगवान् व्रजराजनन्दनकी अचिन्त्य लीलामहाशक्तिने आज वृन्दावनके रंगमञ्चको एक नये साजसे सजा दिया तथा सर्वथा अभूतपूर्व दृश्य प्रारम्भ हो हुआ। शारदीय मन्द समीरके झोंकोंसे तरुकिसलय कम्पित हो रहे हैं, तरुशाखाओंपर बैठे हुए पक्षियोंके मधुर कलरवसे वन निनादित हो रहा है। मानो वनकी अधिष्ठात्री वृन्दादेवी किसलय–संचालन तथा पक्षीकलरवके मिससे नृत्य करती हुई गा रही हैं, नये दृश्यका मंगलाचरण कर रही हैं। अचानक पट–परिवर्तन हुआ और दृश्य सामने आ गया।

स्तूपाकार यज्ञ–सम्भारके निकट खेलते हुए राम–श्याम दोनों आ पहुँचे। चपल नन्दनन्दन एवं बलरामने कुछ वस्तुएँ उठाकर देखना चाहा कि ये क्या हैं। पर जननीने हाथ बढ़ाकर दोनोंको पकड़ लिया और बोलीं—'मेरे लाल ! आज यज्ञ है, यह देवान्न है। तेरे बाबा एवं ब्राह्मण इस

अन्नसे यज्ञ करेंगे। तू खेलकर आ रहा है, तुझे इनका स्पर्श नहीं करना चाहिये।' व्रजराजनन्दन स्थिर खड़े होकर आश्चर्यचकित नयनोंसे द्रव्यसंभारकी ओर देखने लगे। पर अब व्रजराजके लिये द्रव्यसम्भारमें मनोयोग देना कठिन हो गया। प्राणोंमें एक विद्युत-सी दौड़ उठी—एक बार अपने लालको हृदय लगाकर उसे प्यार कर लूँ, आह कैसी भोली चितवनसे यह मेरी ओर देख रहा है !

नन्दराय मानो खिंचे हुए-से द्रव्यस्तूपोंके बीचसे निकल आये। निकट आकर राम-श्यामको गोद लेकर उन्होंने छातीसे लगा लिया। नन्दरायके बाहुपाशोंमें बँधे दोनों भाइयोंके नेत्र खिल उठे। एक क्षणके लिये बंकिम दृष्टिसे परस्पर दोनों भाइयोंने एक दूसरेको देखा, मानो कुछ संकेत-सा कर रहे हों। फिर दूसरे ही क्षण अनन्त मधुधाराकी वर्षा-सी करते हुए व्रजराजनन्दनने पूछा—'बाबा ! आज क्या है, किसका यज्ञ है, यज्ञ कैसे होता है, उसका क्या फल होता है ? तुम्हें तो किसी बातकी त्रुटि नहीं, तुम यज्ञ किसलिये करते हो ?' एक साथ ही नन्दके प्राणधनने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी—

कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो व उपागतः।
किं फलं कस्य चोदृशः केन वा साध्यते मखः।।

(श्रीमद्भा० १०। २४। ३)

नन्दरायने मन-ही-मन एक बार इन्द्रको नमस्कार किया। फिर, 'मेरे लाल ! यह वर्षाधिदेव भगवान् इन्द्रका यज्ञ है।' यह कहकर वे अपने प्राणधनको यज्ञकी कर्तव्यता बताने लगे। व्रजराजनन्दन दोनों हाथोंसे अपने बाबाके बायें कंधेको पकड़े हुए गोदमें चढ़े-चढ़े ही सुन रहे थे। नन्दारायने बात समाप्त ही की थी कि चटपट व्रजराजनन्दन बोल उठे—'बाबा ! रात मैंने एक स्वप्न देखा है—

आज एक सपनें कोउ आयो। संख चक्र भुज चारि बनायो।।
मोसों यह कहि कहि समुझायो। यह पूजा किन्ह तुम्हहि सिखायो।।
सूर स्याम कहि प्रगट सुनायो। गिरि गोबर्द्धन देव बतायो।।

* * *

यह तब कहन लगे दिवराई। इंद्रहि पूजे कौन बड़ाई।।
कोटि इंद्र हम छन में मारैं। छन ही में पुनि कोटि सँवारैं।।

जाके पूजें फल तुम पावहु। ता देवहि तुम भोग लगावहु।।
तुम आगे वह भोजन खैहै। मुख माँगे फल तुमको दैहै।।

व्रजराजनन्दका स्वप्न सुनकर सभी गोप चकित हो उठे। सभी अपना–अपना अनुमान लगाने लगे। हठात् श्यामसुन्दरका मुख एक अनिर्वचनीय तेजसे उद्दीप्त हो उठा, उनके मुखसे अनर्गल शास्त्र–वचन निकलने लगे; सबका सारांश था—इन्द्रयागके स्थानपर गो–यज्ञ, ब्राह्मण–यज्ञ, गोवर्द्धन–यज्ञ करो ! नीलमणिको इस प्रकार परम विद्वान्‌की तरह तर्कसमन्वित युक्तियोंसे इन्द्रयागका खण्डन करते देखकर सब–के–सब आश्चर्यमें पड़ गये। सन्नन्दने अनुभव किया—'एक नील तेजःपुञ्ज यशोदाके नीलमणिके चारों ओर छिटका हुआ है।' अतः परस्परके परामर्शसे यह निष्कर्ष निकला कि साक्षात् आदिपुरुष नारायणने ही नीलमणिके मुखसे ऐसी आज्ञा दी है। जिस नारायणने अबतक व्रजके प्राणधन नीलमणिकी अनेक विपत्तियोंसे रक्षा की, उनकी आज्ञा ही सर्वमान्य है।' इसी निश्चयके अनुसार उसी क्षण इन्द्रयागका प्रयत्न गोवर्द्धनयागके रूपमें परिणत हो गया। गिरिराजके चरणतलमें समस्त व्रज एकत्र होने लगा। दो घड़ियोंमें ही पर्वतराजका चरणप्रान्त अनन्त गो–गोप एवं गोपांगनाओंसे परिपूर्ण हो गया।

यथासमय स्वस्त्ययनपूर्वक गिरिराजकी विधिवत् पूजा आरम्भ हुई। अन्न, व्यञ्जन आदि स्तूपाकार सजा दिये गये। व्रजराजनन्दनके परामर्शसे सभी गोप एकचित्त होकर प्रत्यक्ष प्रकट होनेकी आशासे गिरिराजकी उपासनामें—

बिनती करत सकल अहीर।
कलस भरि भरि ग्वाल लै लै सिखर डारत छीर।।
चल्यो बहि चहुँ पास ते पय सुरसरी जल ढारि।
बसन भूषन लै चढ़ाए भीर अति नर–नारि।।
मूँदि लोचन भोग अरप्यो प्रेम सों रुचि भारि।
सबनि देख्यो प्रकट मूरति सहस भुजा पसारि।।
रुचि सहित गिरि सबनि आगे करनि लै लै खाय।
नंदसुत महिमा अगोचर सूर क्यों कर गाय।।

गिरिराजने सचमुच सबके भोगको प्रत्यक्ष प्रकट होकर स्वीकार किया, सबका मनोरथ पूर्ण किया। मेघगम्भीर शब्दोंमें नन्दराय और नन्दरानीसे गिरिराजने

वर माँगनेका आदेश दिया। श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए नन्दरायने कहा—

कहत नंद सब तुमही दीनो, माँगत हौं हरि की कुसलाई।

और नन्दरानी बोलीं—

सदा तुम्हारी सेवा करिहौं, और देव नहीं करौं पुजाई।
सूर स्यामको नीके राखौ कहति महरि ये हलधर भाई।।

गिरिराज 'एवमस्तु' कहकर बोले—

और कछू माँगहु नँद मोसों।
जो चाहौ सो देहुँ तुरत ही कहत सबै गोपन सों।।
बल मोहन दोऊ सुत तेरे कुसल सदा ये रैहें।
बाढ़ैं सुरभी बच्छ घनेरै चर तृन बहुत अघैहें।।
इन के कहें करी मम पूजा; अब तुम सब घर जाहु।
भोग प्रसाद लेहु कछु मेरो, गोप सबै मिलि खाहु।।

श्रीगोवर्द्धनका प्रत्यक्ष दर्शन गोपोंके लिये असाधारण बात हुई; सबको दृढ़ विश्वास हो गया कि वास्तवमें श्रीआदिपुरुष नारायणकी इच्छा व्रजराजनन्दनमें अभिव्यक्त हुई थी। लीलाशक्तिकी इच्छासे गोप यह तो नहीं समझ पाये कि यशोदाके नीलमणि ही स्वयं आदिपुरुष पुरुषोत्तम भगवान् हैं। इस ज्ञानकी आवश्यकता भी नहीं थी; क्योंकि वैसा होनेपर तो मधुर लीलारस–सिन्धुमें निमग्न व्रजगोपोंकी रसानुभूति विच्छिन्न हो जाती। जो हो, अब गोवर्द्धनयागके अनन्तर श्रीकृष्णकी प्रिय गायोंका सत्कार आरम्भ हुआ—

ततश्च सर्वोऽपि विस्रब्धः परमप्रेमभाजनगोसभाजनमारब्धवान्।

(श्रीगोपालचम्पू)

गायोंका श्रृंगार तो सात पहर पूर्वसे होने लगा था—विशेषतः व्रजराजनन्दन श्यामसुन्दरकी गायोंकी वेश–भूषा तो आज देखने ही योग्य थी। सबके सींग सोनेसे मढ़ दिये गये थे; इन स्वर्णिम श्रृंगोंसे उनका सौन्दर्य शतगुणित हो गया था; उज्ज्वल रजतपत्रोंसे मढ़े हुए खुर चमक रहे थे; प्रत्येकके गलेमें मणियुक्तानिर्मित हार लटक रहे थे; सबकौ किंकिणी पहना दी गयी थी; वे घूम रही थीं तथा किंकिणीका झन–झन शब्द गिरिराजके वन–प्रान्तमें गूँज रहा था—

स्वर्णनिर्मितविषाणरूपा रूप्यसंवृतखुरा धृतहाराः।

किंकिणीप्रकरझंकृतियुक्ता नैचिकीनिचितयो रुचिमाञ्चन्।।

(श्रीगोपालचम्पू)

इन गायोंकी भी पूजा की गयी। सुकोमल तृणांकुर एवं विविध पक्वान्न भोजनके लिये दिये गये; इनके बछड़े आज इनके पास ही छोड़ दिये गये। उनके आनन्दकी सीमा न थी। भोजन करती हुई ये गायें स्नेहवश क्षण–क्षणमें श्रीकृष्णकी ओर सिर उठा–उठाकर देख लेती थीं। श्रीकृष्ण दीख जाते तो पुनः चरने लग जातीं। पर यदि नहीं दीखते तो ग्रास लेना स्थगित कर देतीं। जैसे किसी प्रियवियोगमें उपरामता आती है, भोगोंकी ओर दृष्टि नहीं जाती, वैसे ही श्रीकृष्ण ज्यों ही आँखोंसे ओझल हुए कि ये गायें भोजन आदि सब छोड़कर व्याकुल हो जातीं तथा हम्बारवके रूपमें आर्तनाद करने लगतीं—

लब्धार्चाश्चारुवेषैः शबलितवपुषः प्राप्तभोगावलीका
वत्सैः पृक्ताः प्रमोदं पृथुतरमभजन् धेनवः सत्यमेव।
किन्तु श्रीकृष्णदृष्टिप्रमदवलयिता यर्हि तर्ह्येव नो चेत
केचिद्यद्वद्भजन्ते मधुरविधुरतः संस्कृतं षाडवादि।।

(श्रीगोपालचम्पू)

कुछ गोपोंकी गायोंने उनके हाथसे चारा–दाना नहीं लिया, तब वे व्रजराजनन्दनके पास दौड़े आये और बोले—बेटा नीलमणि ! इस चारेको तनिक तू अपने हाथसे छू दे, तेरे हस्तकमलोंकी सुगन्धका संधान पाकर वे गायें अतिशय प्रीतियुक्त होकर चारा खाने लग जाती हैं—

गोपा ऊचुः कृष्ण गोग्रासमेतं हस्ताम्भोजस्पृष्टमीषत्कुरुष्व।
तत्सौगन्ध्यप्राप्तसंधानमेनं गावः सुष्ठुप्रीतितः स्वादयन्ते।।

(श्रीगोपालचम्पू)

इस प्रकार गायोंकी तृप्ति सम्पादन करनेके बाद गायोंका कौतुक आरम्भ हुआ। अनादि परम्परासे नन्दव्रजमें यह गो–सम्भ्रमका कौतुक होता आया है। इस वर्ष भी आरम्भ हुआ। व्रजराजनन्दन श्यामसुन्दर एवं अग्रज बलरामका संकेत पाकर उनके सखा गायोंको विविध चेष्टाओंसे बिझुका देते और गायें पूँछ उठाकर कूदती–फाँदती हुई नृत्य करने लगतीं—

कूकें देत जात कानन पर ऊँची टेरन नाम सुनावत।
सुंदर पीत पिछोरी ले ले मुख पर फेर सबन बिझुकावत।।

काहू कौ बछरा काहू को ले ले आगे आन दिखावत।
पूँछ उठाय सूधि ह्वै भाजत आप हँसत और सबन हँसावत।।
फिर चुचुकार सूधि कर भाजत बछरन अपने हाथ मिसावत।
श्रीबिट्ठल गिरिधर बलदाऊ इहि बिधि अपनी गाय खिलावत।।

एक ओर राजा वृषभानु गायोंको खेला रहे थे, दूसरी ओर अन्य गोपोंकी मण्डली थी; बीचमें थे यशोदाके नीलमणि। उमंगमें भरकर अब नीलमणि स्वयं गायोंको बिझुका रहे थे—

आप गुपाल कूक मारत हैं गोसुत कों भर कोरी।
धों धों करत लकुट कर लीने मुख पर फेर पिछोरी।।

धौरी प्रतीक्षामें थी कि कब मेरे प्राणधन श्यामसुन्दर आकर मुझे खेलाते हैं; इतनेमें श्यामसुन्दर आ गये, धौरीकी उत्कण्ठाका क्या कहना—

खेलन कों धौरी अकुलानी।
ठाढ़ मेल सनमुख आतुर ह्वै नंदनँदन की सुन मृदु बानी।।

धौरी आनन्दातिरेकसे नाच उठी—

बड़रे गोप चकित भए देखत ऐसी कबहुँ न सुनी कहानी।
नाचत गाय भई नौतम ब्रज बरसों बरस कुसल यह जानी।।

धौरीको खेलत देखकर मानो धूमरिको ईर्ष्या हुई; उसने निश्चय कर लिया कि प्रथम स्थान आजके खेलमें मेरा होगा। हुंकार करती हुई श्यामसुन्दरके सामने आयी; मानो प्रणयरोषसे भरकर श्यामसुन्दरको उपालम्भ दे रही थी कि आज मेरी पुचकारमें इतना विलम्ब क्यों। व्रजराज–नन्दन हँस पड़े; धूमरिको खेलाने लगे। सचमुच धूमरिने सबको मात कर दिया—

सब गायन में धूमरि खेली।
स्रवन पूँछ उचकाय सूधि ह्वै ग्वाल भगावत फिरत अकेली।।

धूमरिको सँभालना कठिन हो गया। किसीका साहस नहीं था कि धूमरिको स्पर्श करे। अतः व्रजराजनन्दन हँसते हुए आगे बढ़े—

पकरि लई गोपाल आप ही कंठ बनावत सेली।
चुंबत मुख आँको भर भेटी टेर कहत लाओ गुर भेली।।

इस खेलमें आज सबने यह एक आश्चर्य अनुभव किया कि गायोंके समक्षसे जब श्रीकृष्ण हट जाते थे, तभी गायोंको अपने बछड़ोंकी स्मृति होती थी और बछड़ोंको दूर हटानेपर वे व्यग्र होतीं। अन्यथा श्रीकृष्णके सामने

रहनेपर तो वे मानो सर्वथा श्रीकृष्णमय ही हो जातीं, उन्हें और कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था। यह उनकी प्रत्येक चेष्टासे स्पष्ट हो रहा था—

यदा मुदा याति हरिः परोक्षतां गवां तदा ता निजवत्सकृष्टितः।
व्यग्रीभवन्ति स्म यदा समक्षतां यात्येष यान्ति स्म तदा तदात्मताम्।।

(श्रीगोपालचम्पू)

समय अधिक हो गया था। गायें खेलमें उन्मत्त हो गयी थीं। नन्दकी आज्ञासे गोपोंने उन्हें एकत्र करनेकी अथक चेष्टा की, पर सब व्यर्थ। व्रजराज चिन्तित हो उठे। यशोदाके नीलमणिने पिताके चिन्तित मुखकी ओर देखा; फिर होठोंपर मुरली रखकर उसमें सुर भरने लगे। एक क्षणमें गोवर्द्धनका समस्त वनप्रान्तर मुरलीरवसे झंकृत हो उठा। व्रजांगनाओंके नेत्र बंद हो गये, सभी बाह्यज्ञानशून्य हो गयीं तथा अपार गोराशि जहाँ जैसे थी, स्थिर शान्त खड़ी हो गयीं—

गोवर्द्धनाचलमहस्य युतादियूथगोरोधनाय पशुपा न हि तत्र शेकुः।
फूत्कारकेलिकलया मुरली मुरारेरासीदलं यदसकौ गुणकोटिकल्पा।।

(श्रीगोपालचम्पू)

गोप इस बार जब गायोंको पकड़ने चले, तब प्रतीत हुआ मानो गायोंके मनमें मनःप्राण किसी दूसरे राज्यमें हैं, उनके शरीरको कोई कहीं भी खींच ले जाय। गोपोंने बिना परिश्रम गायोंको एकत्र कर लिया।

इसके बाद ब्राह्मणभोजन आदि अन्य समारोह सम्पन्न करके व्रजराजने गोवर्द्धनकी परिक्रमाका आदेश दिया। आगे–आगे गोपंक्ति, उनके पीछे राम–श्याम, फिर ब्राह्मण, फिर नन्द–यशोदा आदि, उनके पीछे परिजन, फिर अन्य गुरुजनपत्नियाँ, फिर व्रजांगनाओंका यूथ, व्रजांगनाओंकी पीछे दासियाँ, उनके पीछे व्रजके अन्य प्रमुख व्यक्ति तथा अन्तमें अपार जनता—इस क्रमसे गिरिराजकी परिक्रमा प्रारम्भ हुई। व्रजांगनाओंके नेत्रोंमें तो प्रियतम श्यामसुन्दर छाये हुए थे। उन्हें पथ नहीं दीख रहा है, पथके स्थानपर प्राणधन श्यामसुन्दरकी लीला दीख रही है; उन्हींमें तन्मय हुई लीला गाती हुई वे चल रही हैं। परिक्रमा आरम्भ होकर समाप्त भी हो गयी, सभी व्रजकी ओर लौट रहे हैं; पर व्रजांगनाएँ उसी तरह स्वर–मे–स्वर मिलाकर लीला गाती हुई चल रही हैं—

गिरिपूजेयं विहिता केन ? अरचि शक्रपदमभयं येन।।

गिरिपूजेयं विहिता केन ? पूतनिका सा निहिता येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? तृणावर्ततनुदलनं येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? यमलार्जुनतरुमुदकलि येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? वत्सवकासुरहननं येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? व्योमाघासुरमरणं येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? कालियदमनं कलितं येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? खरप्रलम्बकशमनं येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? दवयुग्मं परिपीतं येन।।

(श्रीगोपालचम्पू)

'यह गोवर्द्धन–पूजा किसने की ? जिसने इन्द्रलोकको भयशून्य बनाया, जिसने उस पूतनाका वध किया, तृणावर्तका मर्दन किया, जोड़वाँ अर्जुनके वृक्षोंको जड़से उखाड़ दिया, व्योमासुर और अघासुरका वध किया, कालियनागका दमन किया, धेनकासुर एवं प्रलम्बासुरका विनाश किया और दो बार दावाग्निका पान किया, उसीने यह पूजा की है।'

(८)

अञ्जलि बाँधे देवराज खड़े हैं। कमलयोनि भी गम्भीर चिन्तामें निमग्न हैं। देवराजके मुखपर अतिशय क्लान्ति है। सारा गर्व चूर–चूर हो गया है। सोचा था––समस्त व्रजको क्षणभरमें बहा दूँगा, व्रजका चिह्नतक अवशिष्ट नहीं रहेगा; इस मर्त्य श्रीकृष्णके साथ नन्द, नन्दका परिवार, नन्दके अगणित बन्धु–बान्धव, असीम गोराशि––सभी जलके अतलतलमें सदाके लिये विलीन हो जायँगे। मेरे स्थानपर अपनी पूजा करानेवाला यह गोवर्द्धनपवर्त भी चूर्ण–विचूर्ण होकर अनन्त जलराशिके प्रवाहमें कहाँ–से–कहाँ बह जायगा। जगत् देखेगा, मेरी अवज्ञाका क्या परिणाम होता है। पर सुरराजका यह गर्व धूलिमें मिल गया। सांवर्तक मेघ श्रीहत होकर व्रजसे लौटे।

शुक्ला तृतीयाको वर्षा आरम्भ हुई थी। पहले सांवर्तकने भी सोचा था––सागरको उत्ताल तरंगोंकी–सी जलराशिमें बस, व्रज समाप्त होने जा रहा है। व्रजवासियोंके करुण नादका यह अन्तिम क्षण है। पर देखते–ही–देखते श्याम तमालकी–सी अंगकान्तिका एक बालक आया, मानो खेलने जा रहा हो। इस तरहसे उसने सहज ही हाथ बढ़ाया और दूसरे ही क्षण विशाल गोवर्द्धनपर्वत भूमिसे विच्छिन्न होकर आकाशमें जा उठा। सांवर्तकोंने झाँककर देखा, उसके नीचे वही तमाल–श्यामल बालक खड़ा–खड़ा हँस रहा है।

उसकी एक भुजा ऊपरको उठी है, तथा उसकी कनिष्ठिकापर पर्वतराज छत्राकपुष्पकी तरह टिका है। बालक पुकार रहा है—'ओ बाबा, री मैया, री ग्वालिनो, यहाँ, इसके भीतर आओ; यह देखो, गिरिराज हमारे हाथके ऊपर उठ गये हैं। सभी इनके नीचे चले आओ। सभी गायोंको हाँक लाओ, डरो मत; गिरिराजने तुम्हारी रक्षाके लिये ही भूमिगर्त बना डाला है। जितने दिन वर्षा हो, इसमें सुखसे रहो। मेरे हाथसे पर्वतके गिरानेकी किञ्चत् भी आशंका मत करो।' बालकका आवाहन पाकर देखते–ही–देखते समस्त व्रजवासी, समस्त गोराशि, सम्पूर्ण व्रज ही उस गिरिगर्तमें जा घुसा; बाहर केवल निर्जन वनमात्र बच रहा, जिसपर मूसलाधार वृष्टि हो रही है। सांवर्तगण चाहते थे कि एक बार झाँककर देखें, गिरिगर्तके अन्तर्देशकी अवस्थाका परिचय प्राप्त करें। पर उनकी आँखोंके सामने एक अँधेरा–सा छा गया। उनके अंगोंसे अनवरत–संचारित विद्युत–रश्मि भी उन्हें प्रकाश न दे सकी। वे अब भी कुछ नहीं देख सके। हाँ, गिरिगर्तमें प्रविष्ट होते समय व्रजवासियोंका आनन्दकोलाहल उन्हें स्पष्ट सुन पड़ रहा था; व्रजवासी झाँककर भीतर देखते थे तथा आनन्दमें भरकर अपने साथियोंको उस विशाल गर्तका अनुभव सुनाते थे। वह ध्वनि उनके कानोंमें पड़ रही थी।

सुविन्यस्तनिः श्रेणिलब्धप्रवेशं मणिश्रेणिविद्योतमानप्रदेशम्।
गृहस्येव रत्नांगभित्तिप्रकारं तदूर्ध्वं च तत्तुल्यशोभाप्रचारम्।।
सुखस्पर्शमण्याचितक्षोणिभागं समस्तावकाशादिसंधाविभागम्।
यथापेक्षविभ्राजितस्वच्छनीरं सुखाकारिघर्म्माञ्जिनीचैःसमीरम्।।
करे स्वस्य वामे तु वामे वसन्तं गिरिं लीलयाऽऽस्पृश्य सन्तं हसन्तम्।
तदीयान्तरुद्यन्महाकुट्टिमस्थं हरिं हारिरूपादिभिः प्रागवस्थम्।।
दधद्वेणुमानम्रहस्तप्रधानं कदाचिन्मुदा सख्युरंसे दधानम्।।

(श्रीगोपालचम्पू)

'अहा ! गिरिराजके अन्तर्देशेमें जानेके लिये सुन्दर सीढ़ियाँ निर्मित हैं, समस्त अन्तर्देशे मणिसमूहोंसें जगमग–जगमग कर रहा है; सुन्दर गृहके रत्नमय आँगन, भित्ति आदिके समान ही गिरिराजके आवासके रत्नमय आँगन एवं भित्तिकी रचना है; गृहके ऊर्ध्वभाग छत–प्रकोष्ठ आदि भी वैसी ही शोभाका प्रदर्शन कर रहे हैं; इसका तलदेश सुकोमल मणि संयुक्त है; सबको स्थान देनेके योग्य यथोचित विभाग बने हुए हैं; जितनी आवश्यकता

हो, उतनी मात्रामें यहाँ चम–चम करता हुआ स्वच्छ जल बह रहा है; सुखकर तनुतापहारी मन्द समीर प्रवाहित हो रहा है। ऐसे आवासवाले गिरिराजको व्रजराजनन्दन लीलासे अपने बायें हाथपर लिये, उसे किञ्चित्मात्र ही स्पर्श करते हुए, हँसते हुए अन्तर्देशकी एक विशाल वेदीपर खड़े हैं; उनका मनोहर रूप, परिधान आदि सब कुछ ज्यों–का–त्यों वैसा ही है; वयस भी वही है; उनका दक्षिण हस्तकमल नीचेकी ओर लटक रहा है, उसमें वे वंशी धारण किये हुए हैं; कभी प्रसन्न होकर दाहिने हाथको सखाके कंधेपर रख देते हैं।'

इसे सुनकर ही सांवर्तक मेघोंका सारा उत्साह टूट चुका था। पर उन्हें तो अपने स्वामीका आदेश पालन करना था; अतः वे अपनी सारी शक्ति लगाकर सात दिनोंतक अनवरत जलधारा बरसाते ही रहे। प्रतिक्षण उनकी शक्ति क्षीण हो रही थी; नवमीकी रात्रि आते–आते वे सर्वथा सामर्थ्यहीन हो गये, व्रजके क्षुद्र अंशका भी वे नाश नहीं कर सके। ऐरावतपर आसीन सुरराजका मुख म्लान हो गया। शक्ति समाप्त हो चुकी थी; मेघोंको निवारण करते हुए स्वर्ग लौट आये; किसीको मुख दिखानेकी इच्छा न होती थी। पर एक बड़ा लाभ हुआ——देवराजको। मदका आवरण हटते ही व्रजराजनन्दनका स्वरूप उनके हृदयके दर्पणमें चमक उठा——आह ! जिसे मैं 'मर्त्य कृष्ण' कह रहा था, वह ईश्वरोंका भी परम महेश्वर है; उसकी इच्छासे ही मैं सुरराज बना हुआ हूँ, वह चाहे तो मैं इसी क्षण नरक–कीट बन जाऊँ और नरक–कीट मेरे आसनको सुशोभित करे। सुरराज पश्चातापकी ज्वालामें जलने लगे। सुरगुरु बृहस्पतिका आश्रय लिया। बृहस्पतिके परामर्शसे वे पितामह ब्रह्माके पास आये। उनसे समस्त अपराध निवेदन कर इसका निदान पानेकी आशासे अञ्जलि बाँधे खड़े रहे।

कमलयोनिने सोच–विचारके उपरान्त परामर्श दिया——

गवां कण्डूयंन कुर्याद् गोग्रासं गोप्रदक्षिणाम्।
नित्यं गोषु प्रसन्नासु गोपालोऽपि प्रसीदतीति.....।।
क्षमापनाय कातरस्त्वं तज्जातिमातरं सुरभीमेव भजस्व।

(श्रीगोपालचम्पू)

गोपालके भक्त गौतम आदि ऋषियोंके ये वचन हैं——'गायोंको खाज आनेपर उनकी खाज करनी चाहिये, गोग्रासका दान करना चाहिये,

गोप्रदक्षिणा करनी चाहिये। जिनपर गायें सदा प्रसन्न रहती हैं, उनपर गोपाल भी प्रसन्न होते हैं। सुरराज ! अपराध क्षमा करानेके लिये तुम व्याकुल हो; तुम्हारे लिये यही पथ है कि तुम गोजातिकी माता सुरभिका आश्रय ग्रहण करो।'

श्रीकृष्णकी अवज्ञा करनेवाले सुरराजको देखकर सुरभि खिन्न हो उठी। पर बारंबार अनुनय–विनय करनेपर ब्रह्माकी अनुमतिसे इन्द्रके साथ चल पड़ी। उस दिन कार्तिक शुक्ला एकादशी थी। पुण्य वृन्दावनकी भूमिपर आकर इन्द्रको साथ लिये सुरभि उचित अवसरकी प्रतीक्षा करने लगी।

व्रजराजनन्दन वनमें गाय चराने आये। पुरन्दरके अन्तर्हृदयकी व्याकुलता व्रजराजनन्दनके रसमय निर्मल हृदयमें प्रतिबिम्बित हो गयी थी। उन्हें एकान्त अवसर देनेके लिये ही उन्होंने आज अग्रजको साथ नहीं लिया, सखाओंको भी किसी प्रसंगसे अलग भेज दिया। एकाकी गोवर्द्धनकी रत्नशिलापर विराजमान हैं। सुरराज आकर चरणोंमें दण्डवत् गिर पड़े। नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बह चली, वाणीसे अपने–आप स्तुति निकल पड़ी। स्तुति करते–करते व्रजेन्द्रनन्दनके हस्तारविन्दका मधुरातिमधुर स्पर्श प्राप्त हुआ; देवराज निहाल हो गये, निर्भय हो गये। सुरभि अन्तरिक्षमें छिपी हुई देख रही थी, ठीक उसी समय आ पहुँची। सुरभि प्रणाम करने जा रही थी; पर उसके पूर्व ही व्रजराजनन्दन अञ्जलि बाँधे हुए उठ खड़े हुए तथा बोले 'मा ! कैसे आयी ?' सुरभि बोली––

एते मदन्वया धन्या गोत्वं त्वां सेवितुं गताः।
अहं तु नेदृक्पुण्या यद्गोचरत्वं च नागता।।

(श्रीगोपालचम्पू)

'व्रजराजनन्दन ! ये मेरे वंशज धन्य हैं, जो तुम्हारी सेवाके लिये गौ बन गये। पर मैं ऐसी पुण्यवती नहीं थी, क्योंकि गौ होकर भी तुम्हारे नयनोंके सामने नहीं आयी।'

––कहते–कहते सुरभिके हृदयमें व्रजराजनन्दनका अनन्त असीम ऐश्वर्य जाग उठा, सुरभि स्तुति करने लगी––

'श्रीकृष्ण ! इन्द्रके कोपसे हमलोग सचमुच नष्ट ही हो चले थे, पर तुम लोकनाथने हमारी रक्षा की। तुम्हीं हमारे परमदेव हो; आजसे तुम्हीं गोवंश, ब्राह्मण एवं देवोंके अभ्युदयके लिये हमारे इन्द्र बनो––

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसम्भव।
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत।।
त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते।
भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः।।

(श्रीमद्भा० १०। २७। १६–२०)

उत्तरोत्तर भावसे आविष्ट होकर सुरभिने फिर कहा—व्रजमहेन्द्रकुलचन्द्र ! तुम्हारे चरणस्पर्शसे यहाँके तीर्थ सार्थक हो गये। तुम्हारे दुग्धपानसे यहाँकी धन्य हो गयीं; पर स्वर्गीय गंगाका स्रोत एवं दूधसे भरे मेरे थन, दोनों व्यर्थ ही रहे। मेरे आराध्यदेव ! उनकी सार्थकताके लिये ही मेरे मनमें स्वर्मन्दाकिनीकी धारासे एवं अपने थनकी दुग्धधारासे तुम्हारे अभिषेककी लालसा जाग उठी है; आज्ञा दे दो, हमारे इन्द्र !'

व्रजराजनन्दनके अधरोंपर एक पवित्र मनोहर मुसकान खेलने लगी; यह मुसकान ही संकेत था—'यथेष्टमनुष्ठीयताम्', जैसी इच्छा हो वैसे करो। दूसरे ही क्षण देववाद्य बज उठे; गन्धर्व, अप्सरा, सुरांगनाएँ गान करती हुई नृत्य करने लगीं; ऋषि स्तोत्रपाठ करने लगे; ब्रह्मा–रुद्रकी जय–जय ध्वनिसे आकाश प्रकम्पित होने लगा; एक ओर उत्फुल्ल ऐरावत स्वर्मन्दाकिनी–जलसे पूरित घट अनवरत अपनी सूँड़ोंमें उठा–उठाकर देवराजके हाथोंमें देने लगा; दूसरी ओर सुरभि अपने थनोंसे दूध बरसाने लगी; जलधारा एवं दुग्धधारा एक ही साथ झर–झर करती हुई व्रजराजनन्दनपर गिरने लगी, उनका अभिषेक होने लगा।

अभिषेकके अनन्तर व्रजराजनन्दन 'गोविन्द' नामसे अभिहित हुए। आकाशसे देवताओंने पुष्प–वृष्टि की। अन्तमें पुष्पाञ्जलिके रूपमें इन्द्र, ब्रह्मा आदिने छत्र, चामर, विविध अलंकार, लीलाकमल आदि समर्पण किये। व्रजराजनन्दनके मुखपर वही मुसकान थी। हाँ, उनके सखा दूरसे देख रहे थे, आश्चर्यमें भरकर सोच रहे थे—यह क्या कौतुक है !

इन्द्रादि देवताओंने परिक्रमा कर विदा ली। सखा आये; देवार्पित छत्र, चामर, आभूषणोंसे खेलने लगे। परस्पर सबने शृंगार किया। संध्या होनेको आ रही थी; अतः सभी गायें बटोरकर घरकी ओर चल पड़े। श्रीदामा पूछ रहा था—दादा ! वे चार मुख, पाँच मुख, सहस्र आँखोंवाले कौन थे ? व्रजराजनन्दन हँसते जा रहे थे।

आकाशमें नृत्य, वाद्य, गीत सुनकर नन्द–यशोदा आदि सभी चकित हो गये थे। नन्दरानीने व्रजराजको अपने नीलमणिके पास भेजा; यशोदाके वात्सल्यपूर्ण हृदयमें क्षण–क्षणमें यह भय जाग उठता था––पता नहीं नीलमणिपर कोई विपत्ति तो नहीं आ रही है।

व्रजराजने आकर श्यामसुन्दरको हृदयसे लगा लिया। पूछा––बेटा ! आज आकाशमें बाजे क्यों बज रहे थे, कोई नयी बात हुई क्या ? श्यामसुन्दर मुसकुराकर चुप हो गये। नन्दरायने श्रीदामासे पूछा––'तू बता, बेटा ! आज क्या हुआ है ?' पर श्रीदामाने कहा––'बाबा, मैं गायें बटोरने दूर चला गया था, फिर पीछे आकर देखा तो ———।' बीचमें ही मधुमंगल बोल पडा––'व्रजराज ! आज बड़ा कौतुक हुआ। एक गाय आयी, मनुष्यकी तरह बहुत देरतक कन्हैयासे बात करती रही; एक हजार आँखोंवाला एक आदमी आया, उसने कन्हैयाको दण्डवत् प्रणाम किया; एक बहुत ही बड़ा उजला हाथी था, वह बार–बार घड़ोंमें जल भर–भरकर सूँड़से उसको दे रहा था, एक पाँच मुखोंका और एक चार मुखोंका––दो पुरुष और आये, वे कन्हैयाकी स्तुति गा रहे थे तथा सब मिलकर तुम्हारे नीलमणिपर जलकी धारा गिरा रहे थे––

गौरेका गिरमातनोदथ पुमानन्यःसहस्रेक्षणोऽनंसीत्
कोऽपि करी सितः स्वरुदकान्याहृत्य शश्वद्ददौ।
कौचित् पञ्चचतुर्मुखांगवलितौ स्तोत्रप्रथाञ्चक्रतु
स्ते चान्ये च महामहेन सिषिचुर्गोपेश ! पुत्रं तव।।

(श्रीगोपालचम्पू)

व्रजनरेश आश्चर्यमें डूबे हुए मधुमंगलकी बात सुन रहे हैं। मन–ही–मन सोच रहे हैं––मेरे नीलमणि मेरे कुलदेव नारायणकी अपार कृपा है; वे नारायण ही समय–समयपर मेरे लालमें आविष्ट हो जाते हैं, देवताओंने उन्हींकी अभ्यर्थना की होगी। सोचते हुए नन्दराय नीलमणिके मधुर–मनोहर मुखकी ओर देखने लगे। नीलमणिने अमृतमय कण्ठसे कहा––'बाबा, घर चलो, मैया चिन्ता करती होगी।' इन शब्दोंमें एक विलक्षण मोहिनी शक्ति थी, व्रजराज देवताओंकी बात सर्वथा भूल गये। वात्सल्य–रस–सागरमें डूबते–उतराते हुए नीलमणिका हाथ पकड़े व्रजकी ओर चल पड़े; अपार गोराशि व्रजराजनन्दनको चारों ओरसे घेरे चल रही

थी। व्रजके वन्दिजन गा रहे थे—

आगे गाय पीछे गाय, इत गाय उत गाय,
गोबिंद कों गायन में बसिबोई भावै।
गायन के संग धावै, गायन में सचु पावै,
गायन की खुररेनु अंग लपटावै।।
गायन सों ब्रज छायो, बैकुंठ बिसरायो,
गायन के हेत कर गिरि लै उठावै।
छीतस्वामी गिरधारी बिट्ठलेसबपुधारी
ग्वारिया को भै घरें गायन में आवै।।

(६)

जनसाधारणकी दृष्टिमें व्रज अब सूना हो गया। व्रजराजनन्दन मथुरा चले गये। अपने पीछे वे ग्यारह वर्षकी बड़ी ही मधुर सुधामयी स्मृति छोड़ गये हैं। यह स्मृति व्रजवासियोंके हृत्पटपर अंकित है, जिसमें उलझे हुए उनके प्राण निकल नहीं पा रहे हैं, अन्यथा उड़कर प्राणाधार व्रजराजनन्दनके पास कभीके चले गये होते !

उन व्रजवासियोंके नेत्र श्रीकृष्णलीलामय हो चुके हैं। निरन्तर उनकी आँखोंके सामने एक लीलाचक्र घूमता रहता है। वे अनुभव करते रहते हैं;—'नन्दप्रांगणमें हरिद्रामिश्रित दधिका प्रवाह बह रहा है; यशोदाकी गोदमें एक महामरकत द्युति मनोहर शिशु है। शिशु तो निष्प्राण पूतनाके वक्षःस्थलपर खेल रहा है। यशोदा अपने प्राणधन नीलमणिको पालने झुला रही हैं। गोपशिशु कोलाहल कर रहे हैं। नीलमणिने अपने नन्हे–नन्हे चरणोंको उछाला। उसीसे विशाल शकट उलट गया है। हमने आँखोंसे यह स्वयं देखा है। तृणावर्तके अंग चूर्ण–विचूर्ण होकर शिलापर पड़े हैं। नीलमणि उसपर पड़ा हुआ किलक रहा है। नीलमणि चलना सीख गया। अरे ! यह तो गोवत्सोंसे तनिक भी नहीं डरता। आज दिनभर उनकी पूँछें पकड़े घूमता रहा है। यशोदाका चञ्चल नीलमणि छिपकर नवनीत खाने आया है। स्वयं खाकर बंदरोंको वितरण कर रहा है। यह देखो, दुहनेके पहले ही बछड़ोंको खोलकर उसने सारा दूध पिला दिया। श्रीदाम मैयासे यह रहा है—मैया ! नीलमणिने मिट्टी खायी है। मैया भाँड़ फोड़नेके अपराधमें नीलमणिको ऊखलसे बाँध रही है। हमलोग सभी वृन्दावन चल रहे हैं।

नीलमणि भी छकड़ेपर चढ़ी हुई यशोदा मैयाकी गोदमें बैठा चल रहा है। इन बछड़ोंको चरानेके लिये आज नीलमणि सज–धजकर वन जा रहा है। व्रजांगनाएँ पूछ रही हैं––बेटा सुबल ! बता तो, नीलमणिने वत्सासुरको कैसे उठाकर पटका। मेरे नीलमणि ! बकासुरको चीर डालते हुए तुझे भय नहीं लगा ? भला, इन सुकोमल हाथोंसे तूने व्योमासुरका कचूमर कैसे निकाला ? यशोदा कह रही हैं––'अघासुरसे रक्षा नारायणने ही की, भला उसके मुखमें जाकर नीलमणि जीवित निकल आवे, यह कभी सम्भव था ?' नीलमणि कलियके फनपर थिरक–थिरककर नाच रहा है। आकाशमें बाजे बज रहे हैं, देवता फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं। गोचारण करते हुए नीलमणि वनमें विविध खेल खेल रहा है। मधुमंगल कह रहा है––'री गोपियो ! सुनो, कन्हैयाके साथ हम सब तालफल खाने बैठे ही थे कि धेनकासुर आया। दाऊ दादाने उसे पतंगकी तरह उछाला और आकाशमें घुमाकर मार डाला।' श्रीदाम कह रहा है––'गोपियों ! सुनो, हमारी गायें अलग चर रही थीं, कन्हैया खेलमें हारकर मुझे पीठपर उठाये चल रहा था, इतनेमें बालक बना हुआ प्रलम्बासुर दाऊ दादाको ले भागा। दाऊ दादाने एक मुक्कीकी चोटसे ही उसे मार डाला।' गोपशिशु मैया यशोदासे कह रहे हैं––'मैया ! उसी रातकी तरह फिर आज वनमें दावानल जल उठा था। कन्हैयाके कहनेसे हमलोगोंने आँखें मूँद लीं। बस, पता नहीं उसी क्षण अग्नि कहाँ चली गयी। ओह ! अनवरत मूसलाधार वृष्टि हो रही है। सात दिन हो गये, मेरे नीलमणिके हाथपर गिरिराज टिके हुए हैं। नीलमणि, नीलमणि ! तेरे हाथोंमें पीड़ा तो नहीं हो रही है ? नन्दराय वरुणलोकसे लौटकर कह रहे हैं––'सचमुच मेरे नीलमणिमें साक्षात् नारायण आविष्ट होकर हमलोगोंकी रक्षा करते हैं, आवेशके समय ही मेरा नन्हा–सा नीलमणि अलौकिक–असम्भव कार्य कर देता है। आवेशके समय देवता मेरे नीलमणिमें साक्षात् परमपुरुषको देखकर उसकी अर्चना करते हैं।' गोपशिशु कह रहे हैं––'मैया ! तुम्हारी छाक तो आज पहुँची नहीं, हमलोग भी जल्दीमें आज कुछ भी कलेवा साथ नहीं ले गये थे। गाय चराते–चराते भूखसे व्याकुल हो गये। ब्राह्मणोंके पास कुछ माँगने गये। उन्होंने कुछ भी न दिया। फिर द्विजपत्नियोंसे जाकर कहा, कन्हैयाका नाम सुनते ही वे सब बावरी–सी हो गयीं। अपने घरसे मिष्ठानकी थालियाँ भर–भरकर दौड़ पड़ीं। सबने जाकर कन्हैयाको घेर

लिया। बहुत देरतक कन्हैयासे कुछ कह–कहकर सब रोती रहीं; फिर लौट आयीं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो उनको बाह्यज्ञान नहीं है। हमलोगोंने भर पेट खाया; फिर जाकर देखा, तो वे समाधिस्थ–सी बैठी थीं, और ब्राह्मण सभी पश्चात्ताप करते हुए दुःखसे जलते हुए रो रहे थे—'हाय ! हाय !! व्रजेन्द्रनन्दनके लिये हमारे सूखे हृदयोंमें जरा भी प्यार नहीं। ये स्त्रियाँ ही धन्य हैं। हमारे इस जीवनको धिक्कार है। इसमें तो आग लग जानी चाहिये।' सर्पग्रस्त नन्दकी रक्षा करके नीलमणि हँस रहा है। विद्याधर उसकी प्रदक्षिणा कर रहा है; अरिष्टासुरके संहारसे प्रसन्न होकर देवता नीलमणिपर पुष्प बरसा रहे हैं। नन्दरानी नीलमणिके सुकोमल हाथोंको हाथमें लेकर नारायणसे प्रार्थना कर रही हैं, देवाधिदेव ! मेरे नीलमणिके हाथ असुरके मुखमें जाकर भी अक्षत रहे, यह तुम्हारी ही अनन्त कृपाका प्रताप है। नीलमणि सन्या समय हाथमें दोहनी लेकर गोशालामें गाय दुहने जा रहा है, मथुराकी ओरसे रथपर चढ़ा हुआ कोई आया। नीलमणिके चरणोंमें जाकर लोटने लगा।'

इस प्रकार समस्त व्रजवासी अपने अन्तर्हृदयमें सुधामयी स्मृतिका विचित्र चित्रपट उलटते हुए लीला देखते रहते हैं। जिस समय बाह्यज्ञान होता, उस समय––'हाय, नीलमणि ! तुम कहाँ गये ! मेरे प्राणधन ! कब आओगे, कितने दिन मथुरा और रहोगे' कहकर आँसू बहाने लगते हैं !

व्रजयुवतियोंकी करुण दशाका तो कहना ही क्या। लीलाचक्र उनके सामने भी घूमता रहता है; पर वे तो अब विक्षिप्त–सी हो गयी हैं। इस मतिभ्रमका आरम्भ तो पहले ही हो चुका था। जिस दिन वंशीध्वनि कानोंमें आयी थी, उसी दिनसे वे अनुभव करती थी, मानो कभी वंशीरवका विश्राम हुआ ही नहीं। वे अधिकांश समय निश्चित भी नहीं कर पाती थीं कि किस स्थानपर स्थित होकर व्रजराजनन्दन वंशी बजा रहे हैं, निर्णय करनेके उद्देश्यसे जिधर दृष्टि ले जातीं, उधरहीसे स्वरलहरी गूँजती हुई सुनायी पड़ती। आम्र–कदम्बशाखाओंकी ओर देखतीं तो पहले दीखता–– पक्षी निमीलित नयनोंसे वंशीध्वनि सुन रहे हैं; फिर दीखता, वृक्ष–शाखा, पत्र–पक्षी कुछ भी नहीं हैं, केवल व्रजराजनन्दन ही हैं। अरुणाभ अधरोष्ठोंपर वंशी नाच रही है और उससे उन्मादकारी मधु झर रहा है। सोचतीं—नेत्रोंका भ्रम है, श्यामसुन्दर तो वनमें गाय चराने गये हैं। अब यमुनाके तरंगोंकी ओर

देखने लग जाती; अनुभव होता––प्रवाह स्थिर––स्थगित है, तरल तरंगे घन हो गयी हैं। उनके अन्तरालसे ध्वनि आ रही है; पर दूसरे ही क्षण वही दृश्य सामने आता––यमुना, यमुनाकी तरंगोंके स्थानपर सर्वत्र व्रजराजनन्दन भरे हैं। वंशीमें सुरीला स्वर भर रहे हैं। व्रजांगनाएँ विचारमें पड़ जातीं––हमारी ऐसी दशा क्यों है, हम क्यों नहीं निर्णय कर पातीं कि हमारे प्रियतम श्यामसुन्दर सचमुच कहाँ हैं, कहाँसे वंशी बजा रहे हैं। इसी चिन्तामें आकाशकी ओर देखने लगतीं––प्रतीत होता उधरसे ही वंशीध्वनि आ रही है, और भी एकाग्र होकर दृष्टि डालतीं तो दीखता––विमानोंकी पंक्तियाँ लगी हैं, उनमें सुरलताएँ बेसुध––मूर्च्छित–सी बैठी हैं। प्रेमावेशसे उनके वस्त्र स्खलित हो गये हैं। वे वंशीध्वनि ही सुन रही हैं; पर एक ही क्षण बाद आँखोंके सामनेसे विमान, सुरांगनाएँ सब कुछ अन्तर्हित होकर पुनः समस्त नील गगन वंशीधारी श्यामसुन्दरसे भर जाता; व्रजांगनाएँ कुछ भी निर्णय न कर पातीं। किसी अचिन्त्य प्रेरणासे व्रजराजनन्दनकी दैनन्दिनी लीलाका रस लेनेके लिये ही वे बीच–बीचमें प्रकृतिस्थ होती थीं, अन्यथा निरन्तर वंशीरवके प्रवाहमें ही बहती रहती थीं, उन व्रजकुमारिकाओंकी भी यही दशा थी, कात्यायनी–उपासनाका फल ही उन्हें मिला था––वंशीरवके उद्गमका अन्वेषण करना; प्राणोंकी उत्कण्ठासे वे उद्गमस्थलको मन–ही–मन ढूँढ़ती रहती थीं। इसीलिये मानो इन व्रजांगनाओंका अथक परिश्रम देखकर ही कृपापरवश होकर दूसरे वर्ष शारदीय पूर्ण शशधरकी निर्मल ज्योत्स्नामें वंशीध्वनिने प्रत्येक गोपांगनाका पृथक्–पृथक् नाम ले–लेकर आवाहन किया। इतना ही नहीं, उसने सबको अपने–आप खींच ले जाकर प्रियतम श्यामसुन्दरसे मिला दिया। वह राकारजनी 'ब्राह्मरजनी' बन गयी और व्रजांगनाएँ चिदानन्दरसमयी रासलीलाके सुख–सुधा–समुद्रमें डूबकर कृतार्थ हो गयीं। दो वर्ष कुछ महीनोंतक व्रजांगनाएँ अतुलनीय परमानन्द–रसका उपभोग प्रतिदिन करती रहीं। उनका दिन तो श्रीकृष्णभावनाके स्रोतमें समाप्त होता था और रात्रि मिलनानन्द–सिन्धुमें व्यतीत होती थी। पर हठात् सब कुछ बदल गया। क्रूर अक्रूरके रथपर चढ़कर उनके प्राणाधार प्रियतम मथुरा चले गये। उनके साथ ही उनका भी सब कुछ चला गया। उनकी अन्य सारी स्मृति, सारा विवेक, सारा ज्ञान चला गया है। अब वे निरन्तर पूर्ण मतिभ्रमकी दशामें रह–रहकर रोती हुई पुकार उठती हैं––

अयि दीनदयार्द्र नाथ हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदवलोककातरं दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्।।

'मेरे स्वामिन् ! तुम तो निष्ठुर नहीं हो, तुम्हारा हृदय तो अपार असीम करुणासे भरा है। किसीका भी दुःख तुम देख नहीं सकते। अब तो कंसका भी भय नहीं रहा। अब तो तुम्हीं मथुरेश हो। जो चाहो सो कर सकते हो; फिर मेरे पास क्यों नहीं आते ? मेरे जीवनधन ! मैं तुम्हें कब देखूँगी ? तुम्हारे अदर्शनसे मेरा हृदय अतिशय कातर हो रहा है, भ्रमित हो रहा है। हाय ! मैं क्या करूँ ?'

व्रजांगनाओंके शरीर क्षीण हो गये हैं, वह ताम्बूल–राग–रञ्जित अधरपुट अब नहीं है, अंगोंपर आभूषण भी नहीं हैं, किसी मलिन वस्त्रसे अपने अंगोंको आच्छादित रखकर प्रियतम श्रीकृष्णका नाम रटती रहती हैं। नेत्रोंसे अविरल अश्रुप्रवाह बहता रहता है।

इन्हींकी तरह यशोदाजी भी विक्षिप्त हैं। प्रातःकाल जिस क्षण नीलमणि विदा हुए, ठीक उसी क्षणपर वे प्रतिदिन तोरणद्वारपर आकर बैठ जाती हैं और पुकारने लगती हैं––

जसोदा बार बार यों भाषै।
है ब्रज में कोउ हितू हमारो, चलत गोपालहि राखै।।
कहा काज मेरे छगन मगन कों, नृप मधुपुरी बुलायो।
सुफलक सुत मेरे प्रान हनन को, कालरूप ह्वै आयो।।
बरु ये गोधन हरौ कंस सब, मोहि बंदि लै मेलो।
इतनो ही सुख कमलनयन मेरी, अँखियन आगे खेलो।।
बासर बदन बिलोकत जीवौं, निसि निज अंकम लाऊँ।
तेहि बिछुरत जो जीवौं कर्मबस, तौ हँसि काहि बुलाऊँ।।
कमलनैन गुन टेरत टेरत, अधर बदन कुम्हिलानी।
सूर कहाँ लगि प्रगट जनाऊँ, दुखित नंदकी रानी।।

दासियाँ प्रबोध देती हैं, पर नन्दरानी इस राज्यमें हों तब तो प्रबोध सुनें, वे तो मन–ही–मन अपने नीलमणिको ढूँढ़ती हुई न जाने कहाँ–से–कहाँ घूमती रहती हैं। कभी–कभी कुछ बाह्यज्ञानकी दशामें मथुराके राज्यपथपर जा बैठती हैं, जो मिलता है उसीसे नीलमणिको संदेश देती हैं। नीलमणिको संदेश देकर फिर देवकीजीको संदेश देती हैं––

सँदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तुम्हारे सुत की, मया करत नित रहियो।।
जदपि टेव तुम जानत उन की, तऊ मोहि कहि आवै।
प्रातहि उठत तुम्हारे सुत कों माखन रोटी भावै।।
तेल उबटनो अरु तातो जल देखते ही भजि जावै।
जोइ जोइ माँगत, सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि करि न्हावै।।
सूर पथिक सुनि मोहि रैन दिन बढ्यो रहत उर सोच।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वैहै करत सकोच।।

दासियाँ पकड़ लाती हैं, नन्दरानी दधि–भांडके पास जाकर बैठ जातीं और रोने लगती हैं––

मेरे कुँअर कान्ह बिन सब कछु वैसेहि धर्‌यो रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै।।
सूने भवन जसोदा सुत के, गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै।।
जो ब्रज में आनंद हुतो सो, मुनि मनसहु न गहै।
सूरदास स्वामी बिन गोकुल, कौड़ी हू न लहै।।

यह दशा तो विवेकयुक्त मानव–प्राणियोंकी है। व्रजेन्द्रनन्दनकी गायोंकी दशा भी कम हृदयविदारक नहीं है। उनके शरीर सूख गये हैं, तृण चरना उन्होंने छोड़ दिया है, उनके थनोंसे दूध झरना बन्द हो गया है। निरन्तर मथुराकी ओर ताकती हुई वे अतिशय खिन्न मन भटकती रहती हैं––

धेनु नहीं पय स्रवत उदित मुख चरत नहीं तृन कंद।

धौरी, धूमरीके गोवत्सोंने तो दूध ही पीना छोड़ दिया है। श्रीकृष्णका नाम सुनते ही वे चौंक उठते हैं, चारों ओर दृष्टि घुमा–घुमाकर देखने लगते हैं।

इस तरह अपने विरहमें जलते हुए व्रजकी दशाका प्रतिरूप व्रजराजनन्दनके हृदयपर पड़ रहा है; वे भी तदनुरूप भावोंसे भावित होकर एकान्तमें रो पड़ते हैं। सान्त्वना देने योग्य एकमात्र अग्रज बलराम ही हैं, जो एकान्तमें अनुजके आँसू पोंछा करते हैं। सान्दीपनिकी पाठशालामें व्रजराजनंदनका दिन तो पाठग्रहण, गुरुसेवामें व्यतीत होता है पर रात व्यतीत होती है व्रजकी मधुर मनोहर स्मृतिमें। दिनमें भी गुरुदेवकी गायोंको चारा डालते समय उनकी आँखें छलछल करने लगतीं तथा पासमें कोई न होता तो उनके कण्ठोंमें बाँह डाल वे रोने लग जाते, मानो हृदयमें बसी हुई धौरी–धूमरीकी करुण आँखोंसे

निकला हुआ अश्रु निर्झर ही श्यामसुन्दरके आँखोंसे निर्गत हो रहा है। जो हो, चौंसठ दिनका पाठ पूराकर व्रजराजनन्दन पितृगृहमें लौट आये हैं, रोहिणी मातासे एकान्तमें जाकर व्रजकी बातें पूछते हैं। रोहिणी मैया कुछ ही दिनों पहले व्रजसे लौटी हैं; रोहिणीने जो कुछ कहा, उसे सुनकर व्रजराजनन्दनका धैर्य जाता रहा। व्रज जाना तो सम्भव था नहीं, अतः अग्रजकी गोदमें सिर रखकर व्रजराजनन्दन सिसकियाँ भरने लगे। भला, जिनके संकल्पमात्रसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड क्षणभरमें सृष्ट होकर पुनः दूसरे ही क्षण विलीन हो जाते हैं, उने सर्वशक्तिमान् सर्वैश्र्यनिकेतन स्वयं भगवान् व्रजराजनन्दन श्यामसुन्दरके लिये तीन कोसकी दूरीपर स्थित वृन्दावन जाना सम्भव नहीं हो सका। धन्य है लीलाविहारीकी मधुर लीला ! अस्तु, अग्रजने ही सान्त्वना दी, फिर परामर्श दिया कि 'तुम उद्धवको भेज दो।' व्रजराजनन्दनकी लीलाशक्तिने ही उद्धवको चुना था, इसीलिये उनका नाम सुनते ही व्रजराजनन्दन उत्फुल्ल हो उठे। एकान्तमें सखाको सब समझाया, उनका श्रृंगार किया; यथायोग्य सबके लिये संदेश देने लगे, पत्र लिखने लगे। उस समय व्रजराजनन्दनकी आँखोंसे निरन्तर अश्रुधारा बह रही थी, कण्ठसे वे स्पष्ट बोल नहीं पा रहे थे पर उद्धव तो अपनेको आत्मानन्दकी अनुभूति करनेवाला पुरुष समझते थे, उन्हें आश्चर्य हो रहा था, साक्षात् भगवान् होकर व्रजराजनन्दनमें इतनी व्याकुलता क्यों ? यह संकल्प आया ही था कि व्रजराजनन्दनकी सर्वज्ञताशक्तिने लीलाशक्तिको संकेत कर दिया; अब व्रजराजनन्दनके उस प्रेमिल संदेशमें भी आत्मज्ञानका पुट लग गया, पत्रमें भी। ऐसे संदेशको लेकर उद्धवजी व्रज पहुँचे।

नन्ददम्पति बैठे थे। उद्धवको देख कुछ देर वे नीलमणिके मिलन–सा सुख अनुभव करने लगें। अतः नीलमणिके समान ही उद्धवकी आवभगत हुई; अब परम सुखका अनुभव करते हुए मैया–बाबाके प्रति उनके नीलमणिने जो संदेश दिया था, उद्धव वही कहने जा रहे हैं। उद्धव बोले—

नन्दरानी ! नन्दराय ! श्रीकृष्णने तुम्हारे लिये मुझसे कहा है—

ऊधौ इतनौ कहियो जाय।
हम आवेंगे दोऊ भैया, मैया जनि अकुलाय।।
याकौ बिलग बहुत हम मान्यो, जो कहि पठयौ धाय।
वह गुन हम कों कहा बिसरिहैं, बड़े किये पय प्याय।।
और जु मिलौ नंद बाबा सों, तौ कहियो समुझाय।
तौलौं दुखी होन नहीं पावैं धौरी धूमरि गाय।।

जद्यपि यहाँ अनेक भाँति सुख, तद्यपि रह्यो न जाय।
सूरदास देखौं ब्रजबासिन तबहिं हियौ हरषाय।।

संदेशके उत्तरमें बाबा–मैया केवल रो पड़े। नन्दरानीका रोना तो थमा ही नहीं; नन्दने किसी प्रकार आत्मसंवरण किया। अपने नीलमणिकी बात उद्धवको सुनाने लगे; पर कुछ ही सुना पाये थे कि प्रेमसे विह्वल हो गये, आगे बोल न सके। उद्धवने श्रीकृष्ण–तत्त्वका उपदेश किया, पर नन्ददम्पति तो रोते ही रहे। श्रीकृष्णकी चर्चा सुनकर धौरी, धूमरी श्रीकृष्णकी प्यारी गायें भी वहाँ आकर एकत्र हो गयीं, उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी, पर वे बोलना नहीं जानती थीं। नन्द मानो उनकी सान्त्वनाके लिये ही आन्तर्यामीकी प्रेरणासे संदेश सुनकर भी पुनः उछलने लगे––

जानीमः प्रत्येकं गा मनुते स स्वतोऽप्यधिकाः।
निजकरकवलैः पुषितास्ताः किं चित्ते समाहरति ?
(श्रीगोपालचम्पूः)

'हम सभी जानते हैं मेरा नीलमणि गायोंको अपनेसे भी अधिक प्यार करता है, प्रत्येक गायके प्रति उसका अपने शरीरसे भी अधिक प्रेम है, गायोंको वह अपने हाथसे ग्रास देता था, उसके हाथके ग्राससे ही हमारी गायोंका पोषण होता था; मेरा नीलमणि इन गायोंको स्मरण करता है क्या ?'

उद्धवकी आँखोंमें इनकी बात सुनकर बरबस आँसू आने लगे। रातभर नीलमणिकी ही चर्चा होती रही। उद्धव प्रबोध करते रहे, पर नन्ददम्पतिकी अश्रुधाराका विराम नहीं ही हुआ।

दूसरे दिन उद्धव व्रजांगनाओंसे संदेश कहने गये। लीलाशक्तिकी प्रेरणासे व्रजांगनाएँ आज किञ्चित् प्रकृतिस्थ हो गयी थीं। पर उपदेशके उपक्रमें 'श्याम' नाम सुनते ही वे प्रेमावेशमें बेसुध–सी हो गयीं––

सुनत स्याम कौ नाम बाम गृह की सुधि भूली।
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली।।
पुलक रोम सब अँग भए, भरि आए जल नैन।
कंठ घुटे, गदगद गिरा, बोल्यो जात न बैन।।
बिबस्था प्रेम की।

श्यामसुन्दरका संवाद पाकर तो वे मूर्च्छित हो गयीं––

सुनि मोहन संदेस रूप सुमिरन ह्वै आयो।
पुलकित आनन कमल अंग आबेस जनायौ।।

बिहबल ह्वै धरनी परीं ब्रज–बनिता मुरजाय।
दै जल छींट प्रबोधहीं ऊधौ बैन सुनाय।।
सुनौ ब्रजनागरी।

आत्मानन्दानुभूतिका अभिमान––गर्व उद्धवके अन्तरालसे झाँक रहा था। व्रजराजनन्दनका आत्मज्ञान–सम्पुटित संदेश लेकर वही गर्व अब बाहर निकला। पूरी शक्ति लगाकर उसने व्रजसुन्दरियोंको समझाना चाहा; आत्मज्ञानकी सरिता बहा दी। पर वह सरिता, व्रजसुन्दरियोंके डुबोनेकी बात तो दूर रही उनके चरणोंको स्पर्शतक न कर सकी; वे इसके तटपर अलग खड़ी रहकर श्यामसुन्दरकी विरह–व्यथामें कराहती रहीं।

दिन एक पहर चढ़ आया। यही बेला थी जब कि कोटि–कोटि प्राण–प्रियतम श्यामसुन्दर गाय चराने वन जाया करते थे। गोपियोंके हृदयमें गोचारणपरायण नन्दनन्दनकी मधुर मनोहर छबि नाच उठी। कुछ ही दूरपर गायें सचमुच जोरसे डकार रही थीं, मानो श्यामसुन्दरको ढूँढ़ रही हों; उनके पास ग्वाले उदास मुँह खड़े थे, उन्हें शान्त करनेका प्रयास कर रहे थे। गोपियोंने एक बार दृष्टि उठाकर उनकी ओर देखा। उन्हें दीखता है, एक ओर हमारे प्रियतम श्यामसुन्दर खड़े हैं, तथा दूसरी ओर उन्हें न देखकर गायें डकार रही हैं, ग्वाले भी रो रहे हैं। व्रजसुन्दरियोंके धैर्यका बाँध टूट गया। अपने दुःखसे नहीं, उन मूक गायोंके दुःखसे, ग्वालोंके दुःखसे। वे उस भावनाजात श्रीकृष्णविग्रहके सामने आकुल होकर पुकार उठीं—

अहो ! नाथ ! रमानाथ और जदुनाथ गुसाईं।
नंदनँदन बिडरात फिरत तुम बिनु बन गाईं।।
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गौ–ग्वारन सुख लेहु।
दुख–जलानिधि हम बूडहीं कर अवलंबन देहु।।
निठुर ह्वै कहा रहे ?।।

सबकी आँखोंके सामने एक–एक श्रीकृष्ण हैं, और उन्हें सुना–सुनाकर व्रजांगनाएँ अपना हृदय हलका कर रही हैं, पर हृदय हलका तो हुआ नहीं बल्कि भावके आदान–प्रदानसे आवेश शिथिल हो गया और यह स्मृति जाग उठी कि प्राणधन मथुरा गये हुए हैं। फिर क्या था, विरहसागर उमड़ा, सब एक साथ ही रो पड़ीं—

ता पाछे एक बारही रोई सकल ब्रजनारि।
हा करुनामय नाथ हो केसौ कृष्ण मुरारि !!

फटि हिय दृग चल्यौ।।

विरहसागर हृदयका बाँध तोड़कर आँखोंकी राह बह चला, व्रज-सुन्दरियाँ उसीमें डूब गयीं; प्रवाह वेगसे आगे बढ़ा, उद्धव भी उसमें बह चले।

उमग्यौ ज्यौं तहँ सलिलसिंधु लै तन की धारन।
भीजत अंबुज नीर कंचुकी भूषन हारन।।
ताही प्रेम प्रबाह में ऊधौ चले बहाय।
भलें ग्यान की मेड़ हौं ब्रजमें प्रगट्यों आय।।
कूल के तृन भये।।

उद्धवका जीवन ही बदल गया। वे अब कुछ और ही हो गये हैं। अब उनका एक ही काम है---श्रीकृष्णलीला गा-गाकर व्रजवासियोंको सुख देना। मुखसे लीला गाते रहते और नेत्रोंसे जल बहता रहता। व्रजांगनाओंकी प्रेमदशा देखकर उद्धवको इच्छा हुई---'मैं यदि वृन्दावनके किसी गुल्म-लता-ओषधिके रूपमें परिणत हो जाता और गुल्म-लतादिरूपमें अंकुरित हुए मुझपर इन व्रजसुन्दरियोंकी चरणधूलि पड़ जाती तो मैं कृतार्थ हो जाता।' भावावेग न सँभलनेपर उद्धव उच्च कण्ठसे गाने लगे---

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।
(श्रीमद्भा० १०। ४७। ६१)

कै है रहौं द्रुम गुल्म लता बेली बन माहीं।
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं।।
सोऊ मेरे बस नहीं, जो कछु करौं उपाय।
मोहन होहिं प्रसन्न जो, यहि बर माँगौं जाय।।
कृपा करि देहिं जौ।।

अब उद्धवको कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो श्यामसुन्दर तो यहीं हैं, मथुरा कभी गये ही नहीं। उनका हृदय उत्तरोत्तर प्रेमसे भरता जा रहा है। वे सर्वथा भूल-से गये हैं कि यहाँसे लौटकर सखा श्यामसुन्दरको भी यहाँका कुशल सुनाना है। कई दिन नहीं, कई महीने बीत गये तब कहीं स्मृति आयी और वे व्रजसे विदा हुए। विदा होते समय रोती हुई व्रजांगनाएँ मूक संदेश दे रही हैं, रोती हुई यशोदा नीलमणिके लिये नाना उपहार दे रही हैं। सबसे अन्तमें गायोंको रोती देखकर मैया नीलमणिको यह संदेश

देने लगीं—

ऊधौ इतनी कहियो जाय।
अति कृसगात भई हैं तुम बिनु बहुत दुखारी गाय।।
जल समूह बरसति अँखियन ते हूँकत लेतहि नाउँ।
जहाँ जहाँ गोदोहन करते ढूँढत सोइ सोइ ठाउँ।।
परति पछारि खाइ तेही छिन अति ब्याकुल है दीन।
मानहुँ सूर काढ़ि डारे हैं बारि मध्य ते मीन।।

उद्धवका रथ चल पड़ा। व्रजांगनाएँ मूर्च्छित हो गयीं। गायें डकारती हुई कुछ दूरतक दौड़कर गयीं, पर कृशशरीरसे थककर वे भी गिर पड़ीं; उद्धव सिसक–सिसककर रोते हुए जा रहे हैं।

व्रजराजनन्दनसे मिलनेपर भी उद्धवका रोना थमता नहीं है; रोते–रोते ही उद्धवने सबका संदेश श्यामसुन्दरको सुनाया; संदेशका उपसंहार था—

कहा लौं कहिए ब्रज की बात।
सुनहु स्याम तुम बिन उन लोगनि, जैसे दिवस बिहात।।
गोपी ग्वार गाइ गोसुत वे, मलिन बदन कृस गात।
परम दीन जनु सिसिर हिमी हत, अंबुजगन बिनु पात।।
जो कहुँ आवत देखि दूरि तें, सब पूँछति कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर, कर चरनन लपटात।।
पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस बलिहि न खात।
सूरस्याम सदेसन के डर, पथिक न उहि मग जात।।

व्रजराजनन्दनके नयनोंसे भी अनवरत अश्रुधारा बहती जा रही है। उनके कपोल, वक्षःस्थल सभी भीग रहे हैं। उद्धवकी बात सुनकर बीच–बीचमें गद्गद कण्ठसे केवल इतना कह देते हैं—उद्धव ! व्रजको मैं एक क्षणके लिये भी भूल नहीं पाता—

ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हंससुताकी सुंदर कँगरी अरु कुंजनकी छाँहि।।
वे सुरभी, वे बच्छ, दोहनी, खरिक दुहावन जाँहि।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाँहि।।
यह मथुरा कंचनकी नगरी मनि मुकताहल जाँहि।
जबहि सुरति आवत वा सुख की जिय उमगत तनु नाहिं।।
अनगन भाँति करी वह लीला, जसुदा नंद निबाहि।

सूरदास प्रभु रहे मौन है यह कहि कहि पछिताहिं।।

व्रजराजनन्दनने आँखें बन्द कर लीं। उद्धव मन–ही–मन सोचने लगे––'आह ! श्यामसुन्दर बड़े निष्ठुर हैं, अन्यथा इन गो–गोप–गोपियोंका करुणक्रन्दन सुनकर ये अभी मेरे साथ व्रज चल पड़ते।' सखाके मनमें यह विचार आते ही व्रजराजनन्दनकी आँखें खुल गयीं। इस बार उनके मुखपर एक मन्द मुसकान थी। यह मुसकान मानो अचिन्त्यलीला–महाशक्तिको कुछ संकेत करनेके लिये ही आयी थी। दूसरे ही क्षण, उद्धवकी आँखोंके सामनेसे मथुराका अस्तित्व विलीन हो गया। उद्धव देख रहे हैं––सामने मधुर वृन्दावन है, व्रजराजनन्दन गोचारणके लिये वृन्दावनसे निकले हैं; अद्भुत शोभा है––

भक्तिच्छेदाढ्यचर्चां मलयजघुसृणैर्धातुचित्राणि बिभ्रद्
भूयिष्ठं नव्यवासः शिखिदलमुकुटं मुद्रिकाः कुण्डले द्वे।
गुञ्जाहारं सुरत्नस्रजमपि तरलं कौस्तुभं वैजयन्तीं
केयूरे कंकणे श्रीयुतपदकटकौ नूपुरौ श्रृंखलां च।।
आत्मैकदृश्यगान्धर्वाप्रतिबिम्बकरम्बितैः।
दधद्वक्षस्ययं हारं गुम्फितं स्थूलमौक्तिकैः।।
श्रृंगं वामोदरपरिसरं तुन्दबन्धान्तरस्थं
दक्षे तद्वन्निहितमुरलीं रत्नचित्रां दधानः।
वामेनासौ सरलगुडीं पाणिना पीतवर्णां
लीलाम्भोजं कमलनयनः कम्पयन् दक्षिणेन।।
वंशीविषाणदलयष्टिधरैर्वयस्यैः
संवेष्टितः सदृशहासविलासवेषैः।
गन्तुं वनाय भवनाद्वनजेक्षणोऽयं
मुष्णन् मनो मृगदृशामथ निर्जगाम।।

(श्रीगोविन्दलीलामृतम्)

व्रजराजनन्दनके ललाटमें चन्दन–केसरकी खैर लगी है, कपोलोंपर धातुचित्रोंका श्रृंगार किया हुआ है, अतिशय सुन्दर बहुत–से वस्त्रोंसे सुसज्जित हैं, सिरपर मयूरपिच्छका मुकुट है, कानोंमें कुण्डल हैं, वक्षःस्थलपर गुञ्जाहार, सुनिर्मित रत्नमाला, वैजयन्ती एवं कौस्तुभ हैं। भुजाओंमें अंगद शोभा पा रहे हैं, दोनों हाथोंमें कंकण हैं, अंगुलीमें मुद्रिका हैं, दोनों चरणोंमें मनोहर कड़े, नुपूर, तथा कटिमें क्षुद्रघण्टिकाका धारण किये हुए हैं। मोतीके बड़े–बड़े

दानोंका बना हुआ एक हार वक्षःस्थलपर लटका रहा है, इस हारके प्रत्येक दानेमें श्रीराधाका प्रतिचित्र अंकित है, अवश्य ही इस चित्रको एकमात्र श्रीकृष्ण ही देख पाते हैं, और किसीके ध्यानमें यह चित्र नहीं आता। उदरकी बायीं ओर टेंटमें सींग खोंसा है, टेंटमें ही दाहिनी ओर रत्नजटित मुरली खोंसी हुई है, बायें हाथमें पीले रंगकी छड़ी है, दाहिने हाथसे लीलाकमल नचाते जा रहे हैं। उनके सभी सखा भी उन्हींके समान वंशी, शृंग, लकुटिया आदिसे सुशोभित हैं, उनके समान ही उनके मुखपर भी हास एवं कौतुकप्रियता है, वेष भी उन्हीं–जैसा है। इस प्रकार सज–धजकर व्रजांगनाओंका मन हरण करते हुए कमलनयन व्रजराजनन्दन वन जानेके लिये घरसे निकले हैं।

अपार गोराशि श्रीकृष्णको घेरे हुए चल रहीं हैं। अब वे व्रजकी समीपवर्ती भूमिमें निर्मित गोशालाके पास आ पहुँचे हैं, गोशालाकी शोभा देख–देखकर मुग्ध हो रहे हैं––

गोमयोत्पलिकाकूटैर्गिरिश्रृंगनिभैर्युतम्।
वसितावासमत्तानां षण्डानां संगरोद्धुरम्।।
कृष्णलीलां प्रगायद्भिर्विहसद्भिः परस्परम्।
गोमयावचयव्यग्रैर्गोपदासीशतैर्वृतम्।।
गोयानवत्सवारणव्यग्रगोपशतान्वितम्।
गोमयोत्पलिकाकृद्भिर्जरद्गोपीगणैर्युतम्।।
गवां स्थानीश्रेणीस्फुटितमभितोऽल्पावृतिचयो–
ल्लसद्वत्सावासस्फुरिततलवृक्षावलिचितम्।
करीषक्षोदस्योच्चयमृदुलभूमीतलमसौ
व्रजाभ्यर्णं पूर्णं व्रजधनजनैर्वीक्ष्य मुमुदे।।

(श्रीगोविन्दलीलामृतम्)

गोशालामें गिरिश्रृंगकी तरह ऊँचे–ऊँचे गोबर–कंडोंकी थाक लगी है; इधर–उधर ऋतुमती गायोंके पीछे मत्त साँडोंके टोल युद्धमें संलग्न हैं, शत–शत गोपदासियाँ गोमय–संकलनमें व्यस्त हैं, उनके मुखसे निरन्तर श्रीकृष्णलीलाका कलित गान हो रहा है, परस्पर एक दूसरेको हँसाती हुई आनन्दमें निमग्न होकर गोबर चुन रही हैं। गायोंको वनमें जाती देखकर उनके गोवत्स साथ जानेके लिये उछल–कूद रहे हैं, शत–शत गोप उन गोवत्सोंको रोकनेमें लगे हैं। वृद्ध

गोपियाँ गोबर पाथ रही हैं। गायोंके विश्रामके लिये सुन्दर आवास बने हैं; गोवत्सोंके लिये वृक्षोंके नीचे छोटी छतके गृह बने हैं। शुष्क गोमयचूर्णसे वहाँकी भूमि मृदुल बन गयी है। ऐसी धन–जनपूर्ण गोशालाको देखकर व्रजराजनन्दनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा।

उद्धव दिनभर लीला देखते रहे। अब व्रजराजनन्दनने कंधेपर हाथ रक्खा, तब भावसमाधि टूटी। देखा नन्दनन्दन मुसकुरा रहे हैं।

सन्ध्या हो चली है। अबतक उद्धवने भी भावसमाधिमें सन्धयातककी लीला ही देखी है। व्रजराजनन्दनका हाथ पकड़कर वे प्रासादकी ओर चल पड़े। आँखोंमें आवनी लीला भरी थी, वे अभी भी देख रहे हैं––

कमल मुख सोभित सुंदर बेनु।
मोहनलाल बजावत गावत आवत चारें धेनु।।

साथ ही अन्तर्हृदयमें मानों कोई कह रहा है––उद्धव ! इन व्रजांगनाओंसे, गोपोंसे, गायोंसे, वृन्दावनसे व्रजराजनन्दन कभी अलग नहीं होते; ये जहाँ हैं, वहाँ श्रीव्रजराजनन्दन भी हैं ही !!